जीवनानन्द दास   श्रेष्ठ कविताएँ

अस्तर पर छपे मूर्तिफलक के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ—रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन-कला का सम्भवत: सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुन कोण्डा दूसरी सदी ई0
सौजन्य राष्ट्रीय संग्रहालय नयी दिल्ली

साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत बाङ्ला कविता-संग्रह

# जीवनानन्द दास : श्रेष्ठ कविताएँ

मूल बाङ्ला से हिन्दी अनुवाद

**समीर वरण नन्दी**




साहित्य अकादेमी

Jivanananda Das ki Kavitayen  Hindi translation by Samir Baran Nandi of Jivanananda Das s award winning poems *Shreshtha Kavita* in Bengali  Sahitya Akademi  New Delhi  1997  Rs  100'

साहित्य अकादेमी

पहला सस्करण 1997

**साहित्य अकादेमी**

मुख्य कार्यालय
रवीन्द्र भवन 35  फ़ीरोजशाह मार्ग  नयी दिल्ली 110 001

बिक्री केन्द्र
स्वाति मन्दिर मार्ग नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय
172 मुम्बई मराठी ग्रन्थ सग्रहालय मार्ग दादर  मुम्बई 400 014
जीवनतारा बिल्डिंग चौथा तल  23 ए/44 एक्स डायमड हार्बर रोड
कलकत्ता 700 053
304 305, अन्ना सालई तेनामपेट चेन्नई 600 018
एडीए रगमन्दिर 109 जे सी मार्ग बगलौर 560 002

मूल्य  एक सौ रुपये

ISBN 81 260 0195 X

मुद्रक   सविता प्रिंटर्स  शाहदरा  दिल्ली-32

लेजर टाइपसेटिंग  टीएनबी डीटीपी सिस्टम्स ओल्ड राजेन्द्र नगर  नई दिल्ली 110060

# भूमिका

*कविता क्या है–इस जिज्ञासा का कोई धुँधला सा उत्तर देने से पहले अत्यन्त स्पष्ट भाव से कहा जा सकता है कि कविताएँ कई तरह की होती हैं। होमर ने कविता लिखी मालार्मे रेम्बो और रिल्के ने भी। शेक्सपियर बादलेयर रवीन्द्रनाथ और एलिएट ने भी कविताएँ लिखीं। कोइ पाठक कवि को सबसे पहले एक सस्कारकर्ता की भूमिका में देखता है। किसी किसी की दृष्टि केवल रस की ओर रहती है। कविता रस का ही व्यापार है एक तरह से यह उत्कृष्ट हृदय की विशेष अभिज्ञताओं और चेतना की वस्तु है मात्र कल्पना या केवल बुद्धि रस नही।*

*सुधी पाठकों के विचारों और रुचि को जानना कवि के लिए अनिवार्य है। कविता के विषय में पाठक एव समालोचक किस तरह अपनी जिम्मेदारी निबाहते हैं और इस कार्य को कैसे सम्पन्न किया जाए इस चेतना के ज्ञान पर कवि का भविष्य निर्भर करता है। मुधे लगता है कि इसी से स्पष्ट भाव से खडे होने का सुयोग पाया जा सकता है। काव्य चेतना का आस्वाद ग्रहण करने पर विचारने के लिए तरह तरह के स्वभाव और पद्धतियों को विचित्र सच झूठ को अपने विवेक की तुला पर जाँचने परखने का काम आधुनिक काव्य के आधुनिक समालोचक प्राय करते हैं। लेकिन तो भी कवि की कुछ विशेषताएँ अचर्चित रह जाती हैं।*

*मेरी कविताओं को या इस काव्य के कवि को निर्जन या निर्जनतम नाम दिया गया है। किसी ने कहा कि ये कविताएँ प्रमुखत प्रकृतिपरक हैं या मुख्य रूप से इतिहास ओर समाज चेतनाधर्मी हैं। किसी ने कहा–यह निश्चेतना का 'सुर्रियलिस्ट ' कवि है। और भी कई बातें कही गईं। प्राय ये सारी बातें आशिक रूप में सच हैं। ये किसी किसी कविता या इसके परिच्छद पर लागू हाती हैं। सम्पूर्ण काव्य पर नही । वस्तुत काव्य एव अन्तत सृजन और काव्य पाठ दोनों ही व्यक्ति मन से सबध रखते हैं। इसलिए पाठक और समालोचक की उपलब्धि और चिन्तन एक से है। इस तारतम्यता ने एक सीमारेखा खीच रखी है। कविता में इन बातों से परे जा कुछ है उसका उल्लेख न किया जाए तो बडा आलोचक भी अपना नुकसान कर बैठता है।*

भिन्न भिन्न देशों में बहुत दिनों से काव्य सग्रह निकल रहे हैं। बाङ्ला में ऐसे सग्रह अभी बहुत कम निकल पाये हैं। कई सदियों से आक्सफ़ोर्ड बुक ऑफ मर्स में सकलित कवियों में कोई बडा कवि प्राय नही दिखता। लेकिन सकलन अच्छा है। बहुत पुराने काव्य पर विचार करना अधिक सार्थक एव सुविधाजनक होता है। जबकि नये कवि एव कविता पर विचार करना कुछ कठिन कई कवियों को लेकर एक सग्रह एक कवि की उल्लेखनीय कविताओं को लेकर एक सकलन– पश्चिम में इस तरह की बहुत सी पुस्तकें हैं, लेकिन उसमें कई तात्पर्य भी होते हैं। हमारे देश में भी दो एक पूर्वज (उनीसवी बीसवी शती के) कवियों की चुनी हुई कविताएँ सकलित हुई थी। वह आयोजन कितना सफल रहा कह नही सकता। अच्छी कविता जाँचने परखने की विशेष सामर्थ्य सकलनकर्ता के पास होने के बावजूद कभी कभी पहला सकलन ही कवि की मृत्यु के बाद उसकी सम्भावना की उम्मीद जगाता है। पर किसी किसी सकलन में शुरू से ही यथेष्ट निर्मूल चेतना का परिचय दिखाई देता है। पाठक के साथ विशेष रूप से सम्बन्ध स्थापना की दृष्टि से इस तरह पहले सकलन का मूल्य हमारे देश में भी लेखक पाठक और प्रकाशक तीनों ही धीरे धीरे शायद स्वीकार कर रहे हैं। जिसने कविता लिखना छोडा नही, उसकी कविताओं के ऐसे सग्रह से पाठक और समालोचक इन कविताओं से विशेष परिचय पा सकते हैं। जबकि परिचय का लाभ अपने समकालीनों या समसामयिकों के लिए कई कारणों से दु साध्य होता है।

इस सकलन की कविताओं का चयन श्रीयुक्त विराम मुखोपाध्याय ने मेरी कविताओं के पाँच सकलनों एव दूसरी प्रकाशित अप्रकाशित रचनाओं से किया है। उनके चयन में विशेष शुद्धता का परिचय है। विन्यास साधन में करीब क़रीब रचना के काल-क्रम का भी अनुसरण किया गया है।

–जीवनानन्द दास

# दो शब्द

*जीवनानन्द दास साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत बाडला पहले कवि हैं। 'सभी कवि नही होते कोई कोई ही कवि होता है – ऐसा मानने वाले जीवनानन्द दास बाड्ला साहित्य में कवियों के कवि हैं। इस कवियों के कवि की प्रकृति बौद्धकालीन नगरों की सभ्यता की एक लम्बी यात्रा जैसी है वही आत्मा का सफ़र इस कवि में दिखायी देता है। विभिन्न नगरों और विभिन रूपसियों के साथ प्रेम और करुणा का जीवन लिए दिए इनमें मानव सभ्यता की एक गहरी पीडा है। जीवन और युग की भटकन नर नारी का अर्थवान जीवन्त सौन्दर्य शास्त्र प्रेम करना और बिछुडना, फिर सृष्टि के भीतर बाहर उसे खोजना, उससे आत्मालाप या वार्तालाप करना देखते ही पहचान लेना कि कौन है किस रूप में है किस रग में है भादि का इतना सघन रूप आँकते हैं कि पाठक सृष्टि से भी बडी एक दुनिया में पहुँच जाता है। जिसमें पश्चिम का ज्ञान और एशिया का पूरा सास्कृतिक भूमडल है।*

*मुख्य रूप से उनकी कविता जिन्दा इतिहास है। काल बोध तो है ही नही। एक ही सवेदना के लिए अतीत से भविष्य की यात्रा चलती रहती है– शरीर और आत्मा का क्षण और शाश्वत रिश्ते का हिसाब किताब करती हुई। उसी में है घटना पीडा मृत्यु जिजीविषा कुछ नाम कुछ जगहें कुछ नदियाँ बार बार यों ही दोहराये जाते हैं कि एक कथा रूप बन जाता है जो महाकाव्य का सा प्रभाव डालता है।*

*प्रयसी नारी की उद्याम चाह उसके प्रति आदर सम्मान और गरिमामय रूप प्रदान करना कवि की अनोखी विशेषता है।*

*जेएनयू, नई दिल्ली में अपने अध्ययन काल के दौरान जब मुझमें कविता के बीज पडे थे तो अचानक पूर्वी बगाल (बरीशाल– बाडला देश) में जन्मे जीवनानन्द दास की कविताओं से परिचय हुआ था। फिर मैं उनकी सम्मोहक दुनिया में बहुत घूमा फिरा उसी रसीली श्यामत्मा भूमि का मुझ पर भी जन्म लेने का कर्ज था।*

*बगाल के आचलिक सौन्दर्य से प्रस्फुटित होने वाली कविताओं का अनुवाद सहज कार्य नही रहा। यह मेरे लिए पुनर्रचना का सम्पूर्ण सघर्ष था। पहले कवि को समझना और फिर उसे रचना। इस रचनात्मक सघर्ष को कैसे व्यक्त करूँ।*

समीर वरण नन्दी

# कविता-क्रम

## नीलिमा

रौद्र झिलमिल
ऊषा का आकाश मध्यरात्रि का नील,
अपार ऐश्वर्य वेश में तुम दिखाई देती बार बार
निसहाय नगरी के कारागार की प्राचीर के पार।
उठ रही है यहाँ लपट चूल्हे की आग अनिवार
आरक्त सारे ककर मरुभूमि के तत्प्तश्वास मिला
मरीचिका से ढका है।

अनगिनत यात्रियों के प्राण
ढूँढता खोजता नही मिलता पथ का सधान
पाँव में बँधी हैं शासन की मजबूत जजीर
है नीलिमा निष्पलक
लक्ष्य विधि विधान के इस कारातल को
अपने ही माया दण्ड से तोडती हो तुम भी मायावी।

जन कोलाहल में अकेला बैठा सोचता है—
कही दूर—जादूपुर रहस्य का इन्द्रजाल फैलाये
स्फटिक रोशनी में अपना नीलाम्बर फैलाये
मौन स्वप्न मोर के पख की तरह
वास्तविकता के रक्त किनारे आई हो एकाकी

मेरी आँखों से पोंछ जाती है व्याध विद्ध धरती की रक्तलिपि
जल उठती है असीम प्रकाश की उज्ज्वल दीपशिखा।

वसुधा के आँसू के बूँद आतप्त सैकत
छिन्नवस्त्र नग्नशिर भिक्षुदल करुणाहीन ये राजपथ
लाखों करोड़ों अब तब मरते लोगों का कारागार
ये धूल धूम्र गर्भ विस्तृत अंधकार
डूब जाती है नीलिमा में स्वप्नयुत मुग्ध आँख पाते
शाप्र शुभ्र मेघ पुंज में शुक्लाकाश में नक्षत्र की रात में।

तुम्हारे चकित स्पर्श से—
टूट जाती है कीटप्राय धरणी की
विशीर्ण निस्तब्धता
है अतन्द्र बहुत दूर है कल्पलोक।

## पिरामिड

समय बहता जा रहा है
गोधूलि की मेघ सीमा पर
धूम्रमौन साँझ
रोज बजता है नये दिन का मृत्यु घटा,
श्मशान पर शताब्दी के शवदाह
की भस्माग्नि जल रही है
पथिकों को म्लान चिता पर चढाते चढाते
एक-एक कर मिट गए देश जाति ससार समाज।

किसके लिए, किसके लिए है समाधि!
तुम बैठी हो अकेली–
कैसे किसी विक्षुब्ध प्रेत की तरह
अतीत का सब ताम झाम
पल में खोकर
अब क्या ढूँढती रहती हो।

किस दिवा अवसान पर लाखों मुसाफ़िर
चिराग बुझा घर आँगन छोड गये
चली गई प्रिया चले गये प्रेमी
युगान्तर में मणिमय गृहवास छोड

चकित हो चले गये वासना के पसारी–
कब किस बेला के अन्त में–
हाय दूर अस्त माथे की देह पर।

तुम्हें गय नहा वे अन्तिम अभिनन्दन का अर्घ्य चढाये
साँझ की ओस नील समुद्र मथकर
तुम्हारे मर्म में बैठी नही उनकी विदावाणी !
तोरण तक आये नही लाखों लाख मृत्यु सधानी
करुणा से पीले हुए–छल छल गिरते आँसू
जगले और दरवाजे पर काला पर्दा डाल गये
नही जानते हो तुम,
नहीं जानती मिस्र की मूक मरुभूमि भा उनका सधान
हे निर्वाक पिरामिड !

अतीत का स्तब्ध प्रेत प्राण
अविचल स्मृति का मदिर
आकाश का प्राण तकते बैठे हा स्थिर
निष्पलक दोनों भौंहे ताने हुए
देख रहे हो अनागत पेट की ओर
रक्तमेघ मयूर के प्राण से
जला जा रहे हैं नित्य निशि अवसान पर
नव भास्कर।

धीरा उठना है अनाहत मेमनों का स्वर
नवोदित अरुण के लिए
किम आशा दुराशा में स्थायी थान पर उँगली रखे
न-न पिरामिड के मर्म के आस पास नाचता जाता है

पल दो पल खून का फ़व्वारा–
एक प्रगल्भ उग्र उल्लास का संकेत लिए
रुक जाती है किसी मुहूर्त में एक पथिक वीणा
शताब्दी का स्थिर विरही मन–
नीरव, आकाश के पीत रक्ताभ सागर के पार मरता फिरता रहता है सतरी
स्फीत रेत सागर में
चचल मृगतृष्णा के द्वार पर
मिस्र के अपहृत अन्तर के लिए
भिक्षा माँगते हो मौन।
कब खुलेगा रुद्र माया द्वार
मुखरित होगा प्राण सचार
कब बोलेगा ख़ामोश नीला आकाश
इसलिए टूटी रातों में बैठे हो हाय!

कितने आगन्तुक काल अतिथि सभ्यता
तुम्हारे द्वार आकर कह जाते हैं चट तुम्हारे अन्तर की बात
उठा जाते हैं उच्छृखल
रुद्र कोलाहल
निरुत्तर निर्वेद निश्चल
रहते तुम मौन अन्यमनस्क
प्रिया की छाती पर बैठे
नीरव में शव साधनारत–
हे खण्डित अस्थि प्रेमी स्वराट
अपने सुप्त उत्सव से
उठोगे कब जगकर?

सुस्मित आँखें उठाकर
कब अपनी प्रिया के

स्वेद कृष्ण पाण्डु चूर्ण व्यथित माथे पर
अकित करोगे चुम्बन ?

मिस्र के आँगन में गरिमा का दीया कब जलेगा ?
किसके लिए बैठे हो आज भी अश्रुहीन स्पन्दहीन
उलटते पलटते युग युगान्तर के श्मशान की राख
प्रेम पर देते हुए पहरा
अपनी प्रेत आँख खोले हुए।

शुरू होगा हमारे जीवन का पतझर
जाते हुए हेमन्त के कोहरे में–
जलती दोनों आँखें खोले ?

दो दिन की ओट में
हम गढ़ते हैं स्मृति का श्मशान
नव उत्फुल्ल सुन्दरी के गीत हमें
भुलाये रखते हैं विचित्र आकाश में।

अतीत की हिमगर्भी इस क़ब्र के पास
भूल जाते हैं दो बूँद आँसू गिराना।

## उस दिन इस धरती की

उस दिन इस धरती की
हरे द्वीप की छाया–उच्छल तरंगित भीड
मेरी आँखों में जगे जगे धीरे धीरे खो गयी
कुहासे में टूटे शरीफे की तरह।
चारों ओर डूब गया कोलाहल
सहसा ज्वार जल में भाटा बह गया
सुदूर आकाश का मुख आकर
मेरी छाती में उठ गया हाहाकार।

उसी दिन हुआ मेरा अभिसार
मिट्टी के रिक्त प्याले की व्यथा तोडकर
बक के पख की तरह सफ़ेद लघु मेघ में
तैर रही थी आतुर उदासी
बन की छाया के नीचे तैरती है कोई भीगी आँख
रोती है बार बार कोई बाँसुरी
उस दिन वो सब नही सुना
क्षुधातुर दो आँख उठाये
सुदूर सितारों की कामना में आँखें अपनी रखी थी खुली।

मेरी यह शिरा-उपशिरा
चौंक कर टूट गयी धरती में शिरा बन्धन
सुना था कान लगाये जननी का स्थविर क्रन्दन–
मेरे लिए पीछे से तुम्हारी पुकार मिट्टी है–माँ–
पुकारा था भीगी घास हेमन्त के हिममास ने जुगनुओं के झुड ने
पुकारा था जली हुई भूमि की लाल माटी ने श्मशान की खेयाघाट ने आकर
ककालों का ढेर
लहकी लहकी चिता
कितने पूर्व जातक के पितामह–पिता
सवनाशा–व्यसन–वासना
कितने मृत साँपों का फन
कितनी तिथियाँ कितने अतिथि–
कितने सौ योनिचक्र स्मृति ने
किया था मुझे उथला।
आधे अधेरे–आधे उजाले
मर साथ मेरे पीछे भागे आये,
मिट्टी के चुम्बन से सिहर उठे मेरे होंठ मेरे रोम रोम।

जलता मैदान धान खेत कासफूल वनहस बालू चर
जैसे बगुले के बच्चे की तरह मेरी छाती पर
इधर-उधर पंख खोले मेरे साथ नाचते चले
बीच बीच में रुक गये वे सब
गिद्ध की तरह शून्य में पंख फैलाये,
दूर दूर और दूर और दूर में चला उड़ा
निःसहाय मनुष्य का शिशु एकाकी–अनन्त के शुक्ल अन्तःपुर में
असीम के आँचल तले–

स्फीत सागर की तरह आनन्द के आर्त कोलाहल में
तुरन्त चढ गया सैकत पर
दूर छाया पथ पर।

पृथ्वी की प्रेत आँख
सहसा तैर उठी तारों के दर्पण में मेरे अपहृत मुख का प्रतिबिम्ब खोजता,
भ्रूणनष्ट सन्तान के पास मिट्टी
दौडी आयी माँ छाती फाड विनती करती,
साथ लिए गगा शिशु वृद्ध मृत पिता,
जच्चाघर और श्मशान की चिता लिए मेरे पास खडी रही वह गर्भिणी के क्रोध से
मेरे दो शिशु आँख तारों के लोभ में
रो उठा पीनस्थल जननी का प्राण,
उसके जरायु के डिम्ब में जन्मी है जो वाछित सतान
उसी के नीचे काल काल में बिछाया है उसने शैवाल का बिछौना
और शाल तमाल की छाया,
लायी है वह नई नई ऋतुराग–पौषनिशा के अन्त में
फागुनी फाग की माया
उसके नीचे वैतरणी के तीर पर उसने ढाली है गगा की गगरी,
मौत का अगार लपेटे स्तन उसके रस से हो उठे हैं तर।

शोभा हो उठी दूब धान की
मानव के लिए वह जो ले आया मानवी
उस मसालेदार इस मिट्टी की झाँझ बहुत रे–
फिर क्यों दो पल के आँसू अमानिशा
छाती में तेरी उठा जाती है दूर आकाश तले नशाखोर मक्खी की तृषा।
धीरे से आँखें मूँदे–शेष रोशनी बुझ गई पलातका नीलिमा के पार,
सद्य प्रसूति की तरह अँधेरी वसुन्धरा फिर से मुझे।

## मौत से पहले

हमलोग जो पैदल चले हैं निर्जन खर खेत पतवार में पौष की सध्या में
देखा है खेत के पार नरम नदी की नारी को फूल बिखेरते
कुहासे में जाने कब की गाँव टोले की लडकियों की तरह जैसे वे
हम लोग देखे हैं जो अन्धकार में आकठ धुँधला
जुगनुओं से भरा जिस खेत में फ़सल नही उसकी जड में
चुपचाप खडे चाँद को ऐसे जैसे फ़सल के पास भी उसकी कोई इच्छा नही।

हम लोग जो बैठे हैं अन्धकार में जाडे की रात बेहतर जानकर
फूस की छत पर सुना है हमने जो मुग्धरात में डैने का सचार
पुराने उल्लू की घ्राण अन्धकार में फिर कहाँ खो गयी।
जानी हैं हमने जाडे की अपरूप रात गहरे आह्लाद से-
खेत खेत डैना तैराने की अश्वत्थ की डाल डाल पर पुकार रहे बगुले
हम लोग जिन्होंने जाना है जीवन का यह सब निभृत कुहक।

हम लोग जिन्होंने देखा है शिकारी की गोली से बचकर
दिगन्त की नम्र नील ज्योत्स्ना में उड जाते बनहसों को
हम लोग जो प्यार से धान की बाली पर हाथ रखते हैं
सध्या के काक की तरह आकाक्षा लिए हम लोग जो फिरे हैं घर में
शिशु मुख की गन्ध घास धूप सोनमछली नक्षत्र आकाश
हम लोगों ने पाये हैं घूम फिर कर इन्हीं के चिह्न बारहों मास।

हम लोगों ने देखे हैं हरे पत्ते को गन्ध के अधेरे में पीले पडते
हिजल लता के जँगले पर प्रकाश और बुलबुलों का खेल
जाडे की रात में चूहे रेशम की तरह रोम में कण खाते
चावल की धूसर गन्ध लहर रूप में होकर झरती है दोपहर
निर्जन मछली की आँख में, पोखर पार हस सध्या के अधेरे मे
मिली नींद की गन्ध मैले हाथों का स्पर्श ले गया उसे।

मीनार की तरह मेघ सुनहली चील का उसके जँगले पर रही पुकार
बेंत झाड के नीचे गौरैयों के अण्डे जैसे नीले पड गये
नरम गन्ध से नदी बार बार किनारे को मलती है
खर के छानी की छाया गहन रात की चाँदनी के मैदान में पड रही है
हवा में झी झी की गन्ध–उजली हवा में बैशाख के प्रान्तर में
नीली तोरी के छाती में गाढा रस, गहरी आकाक्षा में दिखाई देते हैं।

हम लोग जिन्होंने देखे हैं निबिड बरगद के तले लाल लाल फल
गिरे निर्जन खेतों का निचाट मुख देखते नदी में
जितने नील आकाश हैं वे खोजते फिरते हैं और कभी नीले आकाश का तल
जहाँ तहाँ देखता हूँ, मीठे नैन छाया डालती है पृथ्वी पर
हम लोग जिन्होंने देखे हैं सुपारी की सीढी चढ आती है रोज़ सध्या
रोज सुबह होती है धान की बाली सी हरी सहज।

हम लोग जो समझते हैं, जो बहुत दिन माह ऋतु उपरान्त
*पृथ्वी की वही कन्या पास आकर अन्धेरे में नदी की*
बात कहती है हम लोग समझे पथ घाट माठ में
और भी एक रोशनी है जिसकी देह पर है शाम की धूसरता
हाथ छोडकर आँखों से देखने वाली वह रोशनी खडी है स्थिर
पृथ्वी की ककावती नदी बहकर पाती है वहाँ म्लान धूप की देह

## बोध

उजाले अँधेरे में जाता हूँ–माथे के भीतर
स्वप्न नहीं, कोई एक बोध काम करता है
स्वप्न नहीं–शान्ति नहीं–प्रेम नहीं,
हृदय में एक बोध जन्म लेता है
मैं उसे हटा नहीं पाता
वह मेरे हाथ को रखता अपने हाथ में
सब कुछ तुच्छ पशु लगता है–
समस्त चिन्ता प्रार्थना का पूरा समय
शून्य लगता है
शून्य लगता है।

कौन चल पाता है सहज आदमी की तरह?
कौन रुक पाया है इस उजाले अँधेरे में
सहज आदमी की तरह, उसके जैसी भाषा, बात
कौन कर पाता है कोई निश्चय
कौन जान पाता है देह का स्वाद
उसके जैसा चाहता ही कौन है जानना
प्राणों का आह्लाद।
उसकी तरह कौन पायेगा
सब जैसे बीज बोकर तत्काल फूल पाना चाहते हैं।

मैं रुकता हूँ–
वह भी रुक लेता है
सबके बीच बैठकर भी
मैं अपने ही मुद्रा दोष के कारण
अकेला हो जाता हूँ सबसे विलग ?
मेरी आँख में केवल धुंध ?
मेरे रास्ते में केवल बाधा ?

पृथ्वी पर जन्मे हैं जो सन्तान के रूप में–
वे और सन्तानों को जन्म देते देते

मेरी उपेक्षा कर चली गई
बार बार बुलाने पर भी
घृणा से चली गई
फिर भी की साधना तो प्यार की ही की
उसकी उपेक्षा की भाषा की
उसकी घृणा के आक्रोश की
अवहेलना ही की
यह कहकर कि ये सब ग्रह हैं ग्रह दोष हैं
मेरे प्यार के रास्ते में उसने दी बार बार बाधा
इसे मैं गया भूल
फिर भी वह प्यार-रहा कीचड और धूल।

अब दिमाग के अन्दर
स्वप्न नहीं-प्रेम नही-कोई एक बोध काम करता है।
सब देवताओं को छोडकर
लौट आता हूँ अपने ही प्राणों के पास,
अपने हृदय से मैं कहता हूँ-
क्यों वह पानी की तरह घुमड घुमड कर
अकेला अपने आप से ही बातें करता है?
क्या तुम्हें नहीं कोई अवसाद?
रहना आता नहीं शान्ति के साथ?
कभी सोयेगा नहीं चुप सो रहने का स्वाद कभी पायेगा या नही
नहीं पायेगा आह्लाद?
मनुष्य का मुख देखकर
मानुषी का मुख देखकर।
शिशु का मुख देख कर भी?

यह बोध–केवल यही स्वाद
पाया वह अगाध अगाध।
ससार छोडकर आकाश में नक्षत्र पथ
नही जाने के वास्ते खाई थी उसने शपथ–
देखेगा वह मनुष्य का मुख ?
देखेगा वह मानुषी का मुख ?
देखेगा वह शिशु का मुख ?
उसके आँख की काली शिराओं में ताप
उनके कान की बधिरता, मास के लोथडे सी उसकी कूबड[1]
सडे भतुए के छिलके जैसी शक्ल, सडे खीरे सा
जो कुछ भी मेरे हृदय को मिला
वह सब देखूँगा

---

1 यहाँ कवि के अपाहिज पुत्र की ओर सकेत है।

## निर्जन साक्षर

तुम वह सब नही जानती–नही जानने पर भी
मेरे सारे गीत तुम्हारे लिए हैं
जब झर जाऊँगा हेमन्त के सर्द झोंके में–
रास्ते के पत्ते की तरह तब भी तुम
मेरी छाती पर सोयी रहोगी?
गहरी नीद के घर तृप्त होगा
तुम्हारा मन।
तुम्हारे इस जीवन की धार
क्षय हो जायेगी सब उस दिन?
मेरी छाती पर उस रात जमा था जो केवल शिशिर का जल
तुम भी केवल क्या यही चाहती थी?
उसका स्वाद तुम्हें शान्ति देता?
मैं तो झर जाऊँगा–पर अगाध जावन
तुम्हें थामे रखेगा उस दिन भी पृथ्वी पर
–मेरे सारे गीत तुम्हारे लिए हैं।
हर मैदान में घास में–
आकाश में बिखरा है नीला होकर आकाश आकाश में
इसके बावजूद जीवन का रग और क्या खिलाया जा सकता है
य सब छूने पहचानने पर! एक अजब विस्मय

जो पृथ्वी में नही रहा–आकाश में भी नही उसका स्थान
नही पहचान पाता उसे समुद्र का जल
सारी सारी रात नक्षत्र के साथ चलकर भी
उसे मैं नही पाता किसी एक मानुषी के मन में
किसी मनुष्य के भीतर
वह चीज जो जीवित रहती है हृदय के गहरे गह्वर में–
नक्षत्र से भी चुप किसी ख़ामोश आसन पर
एक मानुषी के मन में एक मनुष्य के भीतर।
एक बार कहकर देश और दिशाओं का देव
गूँगा हो पडा रहता है–भूल जाता बतियाना,
जो आग जल उठी थी–उनकी आँखों के भीतर
बुझ जाते हैं डूब जाते हैं मिट जाते हैं।
फिर पैदा होती नई आकाक्षा आ जाता नया समय–
पुराने नक्षत्रों के दिन बीत जाते
नए आ रहे हैं–जानकर भी
मेरी छाती से फिर भी क्या गिरा फिसल कर
किसी मानुषी के अन्दर?
जो प्रेम को पुरोहित बनकर जलाये हैं–छाती के भीतर
मैं वही पुरोहित हूँ–वही पुरोहित।

जो नक्षत्र मर जाते हैं, उसकी छाती की ठडक
लगती है मेरी देह में–
जो तारे जगे हुए हैं उसका आर मुँह किये
जागी हुई हो तुम–
जैसा आकाश जल रहा है उसी तरह मन के आवेग से
जागी हुई हो–

कोई फ़ैसला सुनाती हुई तुम हो गई हो—निश्चिन्त।
होता रहता है आकाश के नीचे कितना प्रकाश और अग्नि का क्षय
कितने वर्तमान बन जाते व्यथित अतीत—
फिर भी छू नहीं गई तुम्हारी छाती को
जो नक्षत्र झरते हैं उसकी उदासी
जगी हुई पृथ्वी उनकी पास—तुम्हारा आधार।
जीवन स्वाद लिए जगी हुई हो तुम क्या मृत्यु की व्यथा
तुम मुझे दे पाओगी?
अपने आकाश में तुम उष्ण बनी रहती हो तब भी—
बाहरी आकाश के शीत में
नक्षत्र हो रहे हैं क्षय
नक्षत्र जैसे वध—
गिर रहे हैं झर झर
क्लान्त हो होकर—शिशिर की तरह टप टप।—
तुम नहीं जानती उनका स्वाद—
तुम्हें तो बुलाते हैं जीवन अबाध
अगाध जीवन।
मैं जब हेमन्त की वर्षा में बरसूँगा
रास्ते के पत्ते की तरह तब भी तुम
मेरी छाती में सोयी रहोगी?
गहरी नींद के घर में तृप्त होगा
तुम्हारा मन।
तुम्हारे इस जीवन की धार
क्षय हो जायेगी सब उस दिन?
मेरी छाती पर उस रात जमा था जो शिशिर का जल—
तुमने भी क्या केवल यही चाहा था—

उसका स्वाद तुम्हें शान्ति देता।
मैं तो झर जाऊँगा—पर अगाध जीवन
तुम्हें रखेगा धरे उस दिन भी पृथ्वी पर—
मेरे सारे गीत तुम्हारे लिए हैं।

## अवसर का गान

(1)

नीद ले रही है भोर की धूप धान पर शीश रखे
यहाँ कार्तिक के खेत में शात गाँव की तरह
मैदान की घास की गध उसकी छाती में–
आँखों में उसकी शिशिर की महक
देह के स्वाद की कथा कहती
उसके स्वाद के अवसाद से पक उठा है धान।

शाम का प्रकाश आकर नष्ट कर देगा उसकी साध का समय।
चारों ओर अब सुबह–
धूप का नरम रग शिशु के गाल का तरह लाल

मैदानी घास पर शैशव का घ्राण–
गाँव टोले के रास्तों पर क्लान्त उत्सव का आया है आह्वान।

चारों ओर झुक आई फ़सल
उसके स्तनों से बूँद बूँद टपक रहा है शिशिर का जल
दूर दूर तक फैली सरसों की गध रह रह कर तिरती आ रही
उल्लू और चूहों की बू से भरे हमारे भण्डार के देश में।

झुक आती है देह धूप यहाँ धान की लाली बनकर
धूप आकर चली जाती है उसके होंठों को चूमकर।

आह्लाद के अवसाद से भर उठता है मेरा शरीर
चारों ओर छाया धूप, खण्ड कण कार्तिक की भीड
आँख की पूरी भूख मिट जाती है यहाँ हो रहा है यहाँ स्निग्ध कान
मोहल्ले टोले की देह पर लगी हुई है आज
रूपशाली- धान बनाती रूपसी के देह की गन्ध।
मैं उसी सुन्दरी को देख लेता हूँ-झुकी हुई है नदी के इस पार
प्रसव में अब देर नही-रूप छलक पडता है उसका-
शीत आकर नष्ट कर जायेगी उसे।

फिर भी आज चुकी नही साल की नयी उम्र
खेत खेत में झर रहा कच्ची धूप हाँडी का रस
मधुमक्खी की गुनगुन की तरह यूँ ही हो रही है आवाज़ बहुत
सुबह धूप की बेला में, अलसाई आभा की बेला।

पेड की छाँह तले मदिरा पर किस भाड ने रचा था छन्द।
उसकी सारी कविता को आज पढा जायेगा आख़िरी पन्ने तक
राज्य जय और साम्राज्य की बातें भूलकर
माटा के ढेरों तले जो मद दबा है निकाल लेंगे उसकी शीतलता
बुला लेंगे मोहल्ले टोले की विवाहयोग्य कन्याओं को।
मैदान की ढलती धूप में नाच होगा-
शुरू होगा हेमन्त का स्निग्ध उत्सव।

हाथ में हाथ लिए गोल चक्कर में घूम घूमकर
कार्तिक की मीठी धूप में हमारा मुख झुलसेगा

बाली धान की गदराई बाली के रग और स्वाद से भर जायेगी हम सबकी देह
न होगा कोई नाराज हमें देखकर कोई नहीं जलेगा भुनेगा हमें देखकर-
हमें फुर्सत नहीं है ज़्यादा

प्रेम और आह्लाद का अलस समय हम लोगों का बीत जाता है सबसे पहले
दूर नदी की तरह पुकार कर एक अन्य घ्राण अवसाद
बुला लेता है हमें और उठा देता है हमें थका सिर और सुस्त हाथ।

तब सरसों की गध खेत से उड जाती है धूप गिरने पर।
आई है शाम अपनी शान्ति सादे राह धरे
तब रुक जाता है आलसी गाँव वालों के खेत का तमाशा-
हेमन्त का प्रसव हो गया है, आख़िरी सन्तान सफ़ेद मरे हरसिगार के बिछौने पर,
शराब की बूँद ख़त्म हो गयी है इस खेत की मिट्टी के भीतर
सारी हरी घास हो गई है सफ़ेद हो गया है आकाश धवल
चला गया है गाँव टोलों की अविवाहित युवतियों का दल।

(2)

बूढे उल्लू कोटर से बाहर निकल आये हैं
अधकार को देखकर मैदान के मुख पर,
हरे धान के नीचे-माटी के भीतर चले गये हैं चूहे
झोपडी से चले गये हैं खेतिहर,
सरसों के खेत के पास आज रात हममें जागी है पिपासा

उर्वर समतलों पर हम लोग खोजते नही हैं मरने का स्थान
प्रेम और उसकी चाहत का गान

हम लोग गाते फिरते हैं मोहल्ले टोले में भाडों जैसे
धान की फ़सल में जिनका लगा रहता है मन
और जो उपेक्षा कर सकते हैं साम्राज्य की
जो अवहेलना कर गये हैं पृथ्वी के सारे सिंहासन–

हम लोगों के मोहल्ले के वे सारे भाड–
युवराज और राजाओं के हाड में जिनके घुल गये हैं हाड
अधकार में ढेरों माटी के नीचे पृथ्वी के तल में,
दीये की तरह वे निश्वास जलते हैं
बीत नही गया उनका समय
पृथ्वी के पुरोहित की तरह उन्हें हुआ नही भय,
प्रणयिनी की तरह वे हुई नहीं हृदयहीन
शहर की लडकियों के नाम कविता लिखकर
खेतिहरों की तरह माथे के पसीने से क्लान्त हो
उन्होंने काटा नही बिताया नही समय
गहरी माटी में उनका कपाल
किसी एक सम्राट के साथ
मिला हुआ है आज अँधेरी रात में
युद्ध जीते हुए पाँच फुट ज़मीन पर
आज उसकी खोपडी करती है अट्टहास।
गहरी रात से पहल आकर वे चले गए हैं–
उनके दिन का प्रकाश बदल गया है अँधेरे में।

वे सारे देहाती कवि गाँव टोले के भाड–
आज इस अधकार में आयेंगे क्या फिर?
उनकी उपजाऊ देह को चूसकर जन्मी है आज खेत में फ़सल

बहुत दिनों से उस गंध को वे चूहे जानते हैं–समझते हैं
नरम रात के हाथ झरता है शिशिर का जल।

वे सारे उल्लू आज शाम की निश्छलता देखकर
अपने ही नाम पुकारे जाते हैं बार बार

मिट्टी के नीचे से वे मृतकों के माथे
स्वप्न में हिलते डोलते करते हैं क्या अद्‌भुत इशारे
ये अंधकार के मच्छर और नक्षत्र जानते हैं।

हम भी आये हैं खेत में फ़सल के बुलावे पर
सूर्य लोक भरा दिन छोडकर पृथ्वी के यश को पीछे फेंककर
शहर बन्दर बस्ती कारखाना  दियासलाई की तीली से जलकर
उतर आये हैं इस खेत में
शरीर का अवसाद और हृदय का ज्वर भूल जाने के लिए
शीतल चाँद की तरह शिशिर के गीले पथ धर कर
हम चलना चाहते हैं फिर मर जाना चाहते हैं
दिन में प्रकाश के लाल लाल आग के मुख में जलते हैं पतंगों से
अगाध धान के रस में हम लोगों का मन
हम लोग मरना चाहते हैं गँवई कवि मोहल्ले टोले की भाड जैसे।

मिट्टी पलटकर चला गया खेतिहर
नया हल उसका पडा हुआ है–
पुरानी प्यास जागी हुई है खेत की
समय की हाँक लगाता है–हमारे भीतर उल्लू
फलता है हेमन्ती धान
दोनों पाँव फैलाकर बैठे पृथ्वी की गोद में।

आकाश के मीठे पथ पर रुक रुक कर तिरता जाता है चाँद
अवसर है उसका– अबोध की तरह आह्लाद भरा
हमारा अन्त होने पर वह चला जायेगा पच्छिम
इतना ही समय बचा है
इसलिए यह बीत जाए रूप और कामना के गीत गाते।

(3)

कटे खेत की गन्ध से यहाँ का भडार भरा है।
पृथ्वी की राह कुछ नही है किसी किसान की तरह
ज़रूरत नही दूर खेतों में जाना
बोध अवरोध क्लश कोलाहल भी सुनने का समय नहीं
नहीं जानना चाहता सम्राट सजे हैं या भाड बने हैं
कही फिर बेबीलोन टूटकर चूर चूर हो जाता है
मेरी आँख के पास लाना नही सैनिकों के मशाल की ज्योति
नगाडे रो लें उल्लू के पख की तरह अन्धकार
में छुप जाय राज्य साम्राज्य के साथ
यहाँ कोई काम नही–उत्साह की व्यथा नही
उद्यम की नहीं, यहाँ मिट गयी है माथे की गहरी उत्तेजना और भावना
आलसी मक्खियों की भिनभिन से भरी होती है खीज भरी सुबह।

पृथ्वी मायावी नदी के पार का देश लगती है
सुबह की पडती धूप चारों ओर से दौडती यहाँ जम जाती है
ग्रीष्म के समुद्र से आँखों में उनींदे गीत तैर आते हैं
यहाँ पलग पर सोये सोये बिताऊँगा कुछ दिन
नींद की कामना में जगा रहकर।

यहाँ चकित होना नही पडेगा भयग्रस्त रहने का नही समय
उद्यम की व्यथा नहीं–यहाँ नहीं है उत्साह का भय
यहाँ आकर काम को हाथ नही लगाना पडता
माथे पर चिन्ता की लकीर नही पडती
यहाँ सौन्दर्य आकर रखेगा नही हाथ आँख और आँख के ऊपर
नही मिलेगा प्यार
सोचने का कीडा मर गया है यहाँ माथे के भीतर

आलसी मक्खियों की भिनभिन से भरी होती है खोज भरी सुबह
पृथ्वी मायावी नदी के पार का देश लगती है
सुबह की पडती धूप चारों ओर दौडती हुई यहाँ जमती है
ग्रीष्म के समुद्र से आँख से उनीदे गीत तैर आते हैं
यहाँ पलग पर सोये सोये बिताऊँगा कुछ दिन
नींद का कामना में जग कर

## कैप मे

यहाँ वन के पास कैंप लगाये पडा हूँ।
सारी रात दखिनी हवा में
आकाश से चाँद की रोशनी में
एक घाई[1] हिरनी की पुकार सुनाई देती है–
किसे पुकारती है वह ?
कही हिरनों का शिकार हो रहा है,
वन में आज आये हैं शिकारी
मुझे भी उनकी गन्ध आ रही है
बिस्तर पर पडे पडे
नीद नही आती
बसन्त की रात।
चारों ओर वन का विस्मय,
चैती बयार
चाँदनी की रसीली देह
एक घाई हिरनी पुकारती है सारी रात,
घने वन में जहाँ उजाला नही होता
वहाँ से नर मृग उसकी पुकार सुनते हैं
टोह लेते हुए उसकी तरफ़ आते हैं।

---

1 नगालैण्ड में पाया जाने वाला विशेष हिरण

आज इस विस्मय भरी रात में
उनके प्रेम की है घडी
उनके मन की सखी
वन की आड लिए लिए
उन्हें बुला रही है चाँदनी में
गन्ध और आस्वाद में घुली
पिपासा की शान्ति के लिए।

कहाँ है बाघ की माँद यह भी नही याद
हिरनों के सीने में आज कही नही ख़ौफ़
नही रही सदेह की धूप छाँह
केवल पिपासा है
केवल रोमाच।
आज जैसे हिरनी के रूप से चीते की छाती भी
विस्मृत है
लालसा आकाक्षा के साथ प्रेम स्वप्न साकार होते दिखाई देते हैं
आज इस बसन्ती रात में
ऐसी है मेरी रात।
एक-एक आ रहे हैं हिरन वन का पथ छोडकर
पानी के शब्द को पीछे फेंककर एक नये आश्वासन की खोज में
दाँत नख की बात भूलकर वन के पास
सुन्दरी के पेड तले—ज्योत्स्ना में
जैसे मनुष्य आता है स्त्री की नमकीन गन्ध पाकर
वैसे ही वे आ रहे हैं।
उनका सकेत पा रहा हूँ,

उनके पाँवों की आवाज सुनाई पडती है
इधर चाँदनी में घाई हिरनी पुकारती है।

सो, नही पाता मैं
कि सोये सोये बन्दूक की आवाज सुनता हूँ,
फिर बन्दूकें दगती हैं
चाँद की चाँदनी में घाई हिरनी फिर पुकारती है

हृदय में अवसाद ने जन्म ले लिया है
यहाँ अकेला पडा रह रहकर
गोली की आवाज सुन सुनकर
हिरनों की पुकार सुन सुनकर।

कल लौटेगी हिरनी
सुबह के प्रकाश में वह देखेगी–
आस पास मरे पडे हैं अपने सारे प्रेमी।
मनुष्यों ने उन्हें यही दिखाया और सिखाया है।
फिर मैं अपने भोजन की थाली में हिरन की गन्ध पाऊँगा
फिर मास खाना होगा खत्म?
क्यों होगा?

इन हिरनों की बातें सोचकर मैं क्यों दुखी होता हूँ
किसी ने बसन्त की
विस्मय रात में मुझे भी तो बुलाया नहीं, ज्योत्स्ना में–
दखिनी हवा में
उसी घाई हिरनी की तरह?

मेरा मन है एक नर मृग—
दुनिया की हिंसा
चाते की आँख का आतंक
सुन्दर चमकने की सब बातें भूलकर
क्या चाहा नहीं था मैंने भी कि खुद को तुम्हें सौंप दूँ?

मेरे हृदय का प्यार इसी मृत मृगी की तरह है।
मर कर धूल में सन गये हैं सारे मृग
और उसी मृगी की तरह तुम भी क्या बच नहीं गई थी?
जीवन की विस्मय रात
एक किसी बसन्ती रात में।

तुमने किससे सीखा!
मृत पशुओं की तरह अपना हाड़ मांस लेकर
हम लोग भी पड़े रहते हैं?
दुःख और वियोग लिए मृत्यु द्वार पर
उस मृत मृग की तरह पड़े रहते हैं
प्रेम साहस साध और स्वप्न के साथ जीवित रहना
बड़ा दुखता है
मैं भी घृणा और मृत्यु
नहीं पाता क्या?

चलती है दुनाली।
घाई हिरनी पुकारती है
मेरी आँखों में नींद नहीं
सोया रहकर नितान्त अकेला
आहिस्ता आहिस्ता

भुला देनी पडती है
बदूक और आवाज
शिविर में बिस्तर पर रात अपनी दूसरी ही कथा कहती है
जिनकी दुनाली से हिरन मर जाते हैं–
हिरन का हाड मास स्वाद और तृप्ति आई है जिनकी थाली में
वे भी तुम्हारी तरह हैं
शिविर के बिस्तर पर नींद में सूख रहा है हृदय सोच सोचकर सोच सोचकर।
यही व्यथा–यही प्रेम सब तरफ़ बहता है–
कही कीडे मकोडों में कही मनुष्य में
कही सबके जीवन में–
बसन्त की चाँदनी में,
हैं हम सब भी वही मृत मृग।

## मैदान की कहानी 1

### उल्लू

खलिहान पहुँची पहली फ़सल
हेमन्त के खेत में
बरसता है शिशिर का जल।

अघ्राण नदी की साँस से
हिम हो रहे हैं
बाँस पत्ते भरी घास आकाश तारे

चाँद फेंकता है बर्फ़ीली फुहार
धान खेत मैदान में
धुआँ सा कुहासा।

घर गया खेतिहर
उनींदी सी धरती
पाता हूँ टेर–
जाने किसकी दो आँखों में नहीं है
नींद की ज़रा सी भी साध।
हल्दी के पत्तों की भीड़ में
शिशिर के पख रगड़े रगड़े

पख की छाया पर शाखा ओढे
नीद की उनीदी तस्वीरें देख देख कर
सलोने चाँद और मधुर तारों के साथ
जगती है अघ्राण रात में
वही अकेला पक्षी,
याद है आज भी–
उस दिन भी इसी तरह–फ़सल पहुँची थी खलिहान
खेत खेत में झर रहे थे उसी शिशिर के स्वर
कार्तिक की अघ्राण, रात में दूसरे पहर
हल्दी के पत्तों की आड में बैठकर
शिशिर में पख रगडे रगडे
पख पर शाखा की छाया ओढे
नीद की उनीदी तस्वीरें देखते हुए
सलोने चाँद और प्यारे तारों के साथ
जागा था यही पक्षी अगध रात में।

नदा की साँस से
वे रातें भी हो जाती हैं सर्द
बाँस पत्ते भरी घास आकाश के तारे,
बर्फ़-सी फुहार फेंकता चाँद
धान खेत मैदान में
जमा धुआँ सा कुहासा
घर गया खेतिहर
उनींदी पृथ्वी में
मैंने पाया सकेत
जाने किसकी दो आँखों में नहीं थी
नींद की ज़रा सी भी कोई साध।

## मैदान की कहानी 2
### रसीला चाँद

रसीला चाँद ताक रहा है
मेर मुख की ओर–दायें और बायें
परती जमीन घास फूस दरार पडी जमीन
ओस की बूँद।

हँसुए सी टेढी रसीले चाँद की आँख-
देख रही है और ऐसी ही जाने कितनी रातें–
जिसका कोई लेखा जोखा नही।

बोलो चाँद!
आकाश तले
खेतों में मिट गया है हल का निशान
फ़सल काटने का समय आ गया है–कब चला गया।

सरसों फल गयी है–फिर तुम क्यों खडे हो
अकेले दायें और बायें
घास पात परती जमीन–जमीन में दरार,
ओस का बूँद

मैं उससे बतियाता हूँ–
फ़सल ठीक रही–
कितने सरसों झर गये–
और बूढे हो गये हो तुम भी इस बूढी धरती की तरह।

खेत खेत में हल की फाल
मिट गया है कितनी बार–कितनी बार फ़सल काटने का
समय आ गया है–चला गया है
सरसों पक गयी है–फिर क्यों हो तुम खडे
दायें और बायें अकेले अकेले
परती जमीन घास पत्ते
ज़मीन में दरार–
ओस की बूँद।

## मैदान की कहानी 3
### कार्तिक के मैदान का चाँद

जाग उठता है हृदय में आवेग।
बीच या शेष रात के आकाश में
जब तुम्हें ले आते हैं
पहाड की तरह वे मेघ।

उसी मृत पृथ्वी ने आज रात जिसे छोड दिया है
फटे फटे सादे मेघ डरकर
भाग गये तरसते बच्चों की तरह
आकाश में नक्षत्र जलने के
कुछ देर बाद
फिर तुम आये
मैदान के बीच ओ चाँद।

धरती पर जिसे होना नही था
उस दिन वही हुआ था
वह फिर हाथ से निकलकर
खो गया और उसी का स्वाद लिए
तुम आज सामने खडे हो।

मैदान धरती चारों ओर चुप्पी
सरसों काटकर चले गये खेतिहर
उनकी माटी की बातें—उनके मैदान की कहानी
सब छिप जाने पर भी बहुत कुछ शेष रहता है—
तुम जानते हो—यह पृथ्वी आज क्या जानती है ?

## मैदान की कहानी 4
### पच्चीस साल बाद

आख़िरी बार उसके साथ जब मैदान में मुलाक़ात हुई थी–
तो कहा था–"एक दिन ऐसे ही समय में फिर तुम आना–
अगर आने की इच्छा रही तो–
पच्चीस साल बाद।
–यह कहकर मैं घर आ गया था।
उसके बाद कितने चाँद सितारे
मैदान में मर गये–चूहे उल्लू–
चाँदनी में धान खेत खोज गये
आँख बुझे दायें बायें पडकर
जाने कितने सोये रहे
जागा रहा केवल मैं अकेला।

नक्षत्र की गति से भी तेज़ चला आ रहा समय
लेकिन पच्चीस साल कहाँ बीत पाते हैं?
एक बार फिर
पीले पडे तृणों से
भरा है मैदान
पत्तों पर सूखे डण्ठलों पर

तैर रहा है कुहासा
चारों ओर गौरैयों के उजडे घोंसले
ओस से भीगी राहों पर
चिडियों के अण्डे का खोल ठडा कडकड
कुम्हडे, एक दो सडे कुम्हडे
लत्ते पत्ते पर सूखे मकडे मकडी का टूटा जाला
खिली खिली चाँदनी में पथ दिखाते
वे कुछ एक तारे दिखते हैं।
हिम आकाश की देह पर खेत मैदान में
घूमते रहते हैं चूहे और उल्लू,
चावल का कण खाकर
आज भी भूख मिटा रहे हैं–
पच्चीस साल जाने कब के कट गये।

## सहज

मेरे ये गीत
तुम आकर कभी सुनोगी नही–
आज रात मेरी पुकार
बह जायेगी हवा में
तब भी मेरा मन गाता है।
बुलाने की भाषा नही भूलता
प्राण में प्यार लिए
दुनिया के आगे
तारों के कान में
गाता हूँ गान।
तुम आकर कभी सुनोगी नही मैं जानता हूँ–
आज रात मेरी पुकार
बह जायेगी हवा में–
फिर भी मन गाता है।

तुम हो जल और समुद्र की लहर की तरह
तुम्हारी देह का वेग–
तुम्हारा सहज मन
तैरता चला आता है

सागर के आवेग में
कौन लहर लग गयी थी उसकी छाती में
अधेरे में-
कौन सी लहर उसे लेने आयी थी
अधेरे में-
वह नही जानता
सागर को रात का जल
सागर की लहर हो
एक तुम भी।
तुम्हें कौन प्यार करता है
तुम्हें क्या किसी ने मन में बसाया है।
पानी के वेग के साथ तुम चली जाती हो-
उच्छ्वास लिए गदला जल बुलाता रह जाता है।

तुम सिर्फ़ एक दिन एक रात की हो
आदमी और औरत की भीड
तुम्हें बुलाते हैं दूर-कितनी दूर-
किस सागर के किनारे-वन में-मैदान में-
या कि आकाश जुडे
उल्का के प्रकाश में तैरती हो
या कि जिस आकाश में
हँसुए की तरह टेढा चाँद
निकल कर छुप जाता है-

वहीं है तुम्हारे प्राण की इच्छा
उसी के पास

जहाँ पेडों की शाखें हिलती है–
जाडे की रात में मृतक के हाथ के सफ़ेद हाड की तरह–
जहाँ वन
आदिम रात की गध
छाती में लिए अधेरे में गाते हैं गीत–
वही हो तुम।

निस्सग
हृदय के गीत में
अधेरी रात की हवा की तरह
एक दिन आकर दे गयी थी उतना
जितना सभव था एक
रात के लिए।

## चिड़िया

बासन्ती रात है। मैं बिछौने पर सोया हुआ हूँ–
अभी बहुत रात
नीद से बोझिल आँखें बन्द नही होना चाहती।
उधर सुनाई पडता है समुद्र का हाहाकार
सिर के ऊपर स्काईलाइट
आकाश में चिडियाँ परस्पर बतियाता
आकाश में न जाने कहाँ उड जाती हैं?
चारों ओर उनके डैनों की गन्ध तैरती है।
बसन्त की रात शरीर में भर आया है स्वाद
आँखें चाहती नही सोना।

जगले से आती है उस नक्षत्र की रोशनी उतरकर
सागर की पनीली हवा में
मेरा मन आराम पा रहा है
सब आर सभी सो रहे हैं–
सागर के इस किनारे किसी के आने का समय हुआ है?

समुद्र के पार बहुत दूर–और उस पार–
किसी एक मेरु पर्वत पर
रहती थीं ये चिडियाँ

बिल्जार्ड की मार से उन्हें समुद्र में उतरना पडा था
मनुष्य जैसे अपनी मौत की अज्ञानता में उतरता है।

बादामी सुनहले सफ़ेद फडफडाते डैनों के भीतर
रबर जैसी छोटी गेंद बराबर छाती में बन्द उनका जीवन-
जैसे रहती है मौत लाखों लाख मील दूर समुद्र के मुख पर
वैसे ही अतल सत्य होकर।

जीवन कही है-और जीवन का आस्वाद भी है अवश्य।
सागर की कर्कश गरज से अलग कहीं नदी का मीठा पानी भी है-
कदुक सी छाती में रहती है यह बात
कही पडा है पीछे शीत और सामने ही है उम्मीद
यही सोचते वे आये हैं।

फिर किसी खेत में अपनी प्रिया को लेकर चले जाते हैं-
रास्ते में, बातों बातों में बने रिश्ते के बाद अडे देने।

सागर का बहुत नमक मथने के बाद मिली है यह मिट्टी
और मिट्टी की गन्ध
प्यार और प्यारी सन्तान
अपना नीड
बहुत गहरा गहरा उनका स्वाद।

आज इस बासन्ती रात में
नीद से बोझिल पलकें मुँदना नहीं चाहती
उधर समुद्र का स्वर
स्काईलाइट सर के ऊपर,
आकाश में चिडियाँ बतिया रही हैं-परस्पर।

## गिद्ध

सारी सारी दोपहर खेत मैदान पर
एशिया के आकाश में
हार घाट बस्ती निस्तब्ध प्रान्तर
जहाँ खेत में दृढ नीरवता खडी रहती है
वहाँ भी आदमी देखता है केवल गिद्ध खा रहे हैं।

आकाश से परस्पर एक आकाश की तरह
रोशनी से उतारकर
उनींदे दिकपाल बने हाथियों जैसे दुरूह बादल से
गिर पडे हों–पृथ्वी में एशिया के–खेत मैदान पर।

कुछ ही क्षण ये त्यक्त पक्षी रुकते हैं फिर आरोहण
अभी काले विशाल डैने ताड पर
और अभी पहाड के शिखर शिखर–फिर समुद्र पार
एक पल पृथ्वी की शोभा को निहारते हैं
फिर आँखें थिर कर देते–लाश लेकर कब जहाज़ आ रहा है
बम्बई सागर तट पर।

बन्दरगाह अंधकार में भिड कर प्रतीक्षा करते हैं
और फिर साफ़ मालाबार में उड जाते हैं

## स्वप्न के हाथ मे

दुनिया भर की परेशानियाँ–देह की बीमारी
टीस उठती है दिल में, इसलिए सपनों के हाथ
मैं खुद को सौंप देता हूँ।

रात दिन की लहरों पर, जो छायाएँ तैर आती हैं
उन्ही की तह में है मेरा जीवन
यदि हमारे मन में धरे होते केवल स्वप्न के हाथ
तो पृथ्वी के दिन रात का आघात कोई झेल नही पाता
किसी का दिल बूढा नही होता–
अगर सब चलते स्वप्न के हाथ धर कर।

आकाश छाया की लहर में हिचकोले खाकर
पूरे दिन और सारी रात प्रतीक्षा करते करते
पृथ्वी की व्यथा विरोध और यथार्थ
हृदय भूल जाता है सब
अन्तर जो चाहता है– भाषा
इच्छा पृथ्वी के कोने कोने जाकर जिसे ढूँढता है–
स्वप्न में वही सत्य होकर तैर उठना है।

और हृदयाकांक्षा की नदी लहरें उठाकर तृप्त होती है।
तृप्त भी होती है तो तुमने नही जाना
पृथ्वी की दीवार पर
अस्पष्ट अक्षरों में लिख नही पाये
अपने अन्तर की बात
उजाले अंधेरे में सब व्यर्थ हो जाता है।
पृथ्वी की यह अधीरता
ठहर जाती है हमारे हृदय में व्यथा
दूर धूल की राह छोडकर
स्वप्न को ही गले लगा लेते हैं हम
उज्ज्वल प्रकाश से भरा दिन बुझ जाता है
मनुष्य की आयु भी समाप्त हो जाती है।
पृथ्वी का वही पुरानी कहानी–
मिटा देती है उसके तमाम निशान।

काल के हाथ मिटा देते हैं और दूसरी सारी चीजें
नक्षत्रों की भी आयु पूरी हो जाती है
किन्तु स्वप्न जगत–
चलता रहता है निरन्तर।

## मैंने देखा है बगाल का चेहरा

मैंने देखा है बगाल का चेहरा इसलिए पृथ्वी का रूप
देखने कही नही जाता अँधेरे में जगे गूलर क पेड
तकता हूँ, छाते जैसे बडे पत्तों के नीचे बैठा हुआ है
भोर का दयोल पक्षी—चारों ओर देखता हूँ पल्लवों का स्तूप
जामुन, बरगद कटहल सेमल पीपल साधे हुए हैं चुप्पी।

नागफनी का छाया बलुआही झाडों पर पड रही है
मधुकर[1] के नाव से न जाने कब चाँद चम्पा के पास आ गया है
ऐसे ही सेमल बरगद और ताड की नीली छाया से भरा पूरा है
बगाल का अप्रतिम रूप।

हाय बेहुला ने भी देखा था एक दिन गगा में नाव से
नदी किनारे कृष्ण द्वादशी की चाँदनी में
सुनहले धान के पास हजारों पीपल बरगद वट में
मन्द स्वर में खजनी की तरह इन्द्रसभा में
श्यामा[2] के कोमल गीत सुने थे बगाल के नदी कगार ने
खेत मैदान पर घुंघरू की तरह रोये थे उसके पाँव।

---

1 सौदागर (सती बेहुला की कथा का पात्र)
2 लोक सगीत

## आकाश मे सात तारे

जब खिल उठते हैं आकाश में सात तारे तब मैं यहाँ
घास पर बैठे रहता हूँ, पीले फल सा लाल मेघ मृत उज्ज्वलता
की तरह गगासागर में डुबोकर ले आती है जैसे शान्ति
अनुगत बगाल की नाली सध्या में–जैसे कोई केशवती कन्या
चली आयी आकाश पर

मेरी आँखों में–बसा है वह चेहरा जिस पर केश बिखरे हैं
पृथ्वी की किसी भी राह ने देखी न होगी कभी ऐसी कन्या–
उसके काले केशों का चुम्बन सेमल कटहल जाम पर झरते
अविरल, कोई नही जानता होगा कि इतनी स्निग्ध गन्ध झरती है
रूपसी के केश विन्यास से

पृथ्वी की किसी राह पर नही होगी कच्चे धान की गन्ध–कलमी[1] की बास
हस के पख खर पोखर के जल चाँद पुँठिया मछली की सोंधी गध
चावल धोई किशोरी की भीगी कलाई ठडा सा हाथ
किशोर के पाँव में चिपकी मोथी घास लाल लाल बटफल की
दुखद गध छायी नीरवता–इसी में है बगाल का प्राण

जब खिल उठते हैं आकाश में सात तारे तब पा जाता हूँ मैं सकेत।

---

1 पानी साग की एक क़िस्म।

## फिर आऊँगा लौटकर

फिर आऊँगा मैं धान सीढी नदी के तट पर लौटकर–इसी बगाल में
हो सकता है मनुष्य बनकर नही–सभव है शखचील या मैना के वेश में आऊँ
हो सकता है भोर का कौवा बनकर ऐस ही कार्तिक क नवान्न के देश में
कुहासे के सीने पर तैर कर एक दिन आऊँ–इस कटहल की छाँव में
हो सकता है बतख बनूँ–किशोरी की–घुँघरू होंगे लाल पाँव में,
पूरा दिन कटेगा कलमी के गध भरे जल में तैरते तैरते
फिर आऊँगा मैं बगाल के नदी खेत मैदान को प्यार करने
उठती लहर के जल से रसीले बगाल के हर करुणा सिक्त कगार पर।

हो सकता है गिद्ध उडते दिखें सध्या की हवा में
हो सकता है एक लक्ष्मी उल्लू पुकारे सेमल की डाल पर,
हो सकता है धान के खील बिखेरता कोई एक शिशु दिखाई दे आँगन की घास प
रुपहले गदले जल में हा सकता है एक किशोर फटे पाल वाली नाव तैराये
या मेड पार चाँदी से मेघ में सफ़ेद बगुले उडते दिखाई दें–
चुपचाप अधकार में, पाओगे मुझे उन्ही में कही न कही तुम।

## गोल पत्तो के छप्पर की छाती चूमकर

गोल पत्तों के छप्पर की छाती चूमकर नीला धुआँ
सुबह आ शाम उडकर घुल जाता है कार्तिक के कुहासे के साथ अमराई में।

पोखर की छोटी छोटी लाल काई हल्की लहर से बार बार चाहती है जुडना
करबी के कच्चे पत्ते, चूमना चाहते हैं मच्छीखोर पक्षी के पाँव
एक एक ईंट धँसकर–खो कहाँ जाती है गहरे पानी में डूब कर
टूटे घाट पर आज कोई आकर चावल धुले हाथों से गूँधती नही चोटी
सूखे पत्ते इधर उधर नही डोलते फिरते
कौडी खेल की मस्ती में–यह घर हो गया है साँप का बिल।

डायन की तरह हाथ उठाये उठाये भुतहा पेडों के जगल से
हवा आकर क्या गयी–समझ नही पाया समझ नही पाया–चील क्यों रोती है
दुनिया के किसी कोने में मैंने नही देखी ऐसी निर्जनता
सीधे रास्ते–भीगे पथ–मुँह पर घूँघट डाले बाँस चढ गया है विधवा की छत।

श्मशान के पार सहसा जब सध्या उतर आती है,
सहज की डाल पर कार्तिक का चाँद निकलने पर रोते हैं उल्लू–नीम नीम     नीम।

## यहाँ का नीला आकाश

यहाँ नीला है आकाश नीले आकाश में खिले हैं सहजन के फूल
खिले हैं–हिम धवल–आश्विन के प्रकाश की तरह उनका रंग
आकन्द फूल का काला भौंरा करता है यहाँ गुंजन
धूप की दोपहरी को भरता है–बार बार धूप उसके सुचिक्कण रोम
कटहल और जामुन की छाती पर लोटता है–चंचल अंगुली से उसे थामे
हल्का हल्का फिरता है यहाँ जामुन लीची कटहल के वन में
धनपति श्रीमन्त, बेहुला छलना के छूता है चरण[1]
मधुर राह में समाई है कौवे और कोयल के देह की धूल।

कब की कोयल जानते हो ? जब मुकुन्दराम[2] हाय–
लिखने बैठे थे दूसरे पहर एकाग्र चित से चण्डी मंगल
तो कोयल की कूक से रुक रुक जाता था लिखना
और जब बेहुला अकेली चली गंगा की धार तैरकर
सध्या के अँधेरे में धान खेत और अमराई के झुरमुट से
कोयल की पुकार सुन सुनकर उसकी आँख में छा गई थी धुंध।

---

1 सती बेहुला कथा के पात्र।
2 उपरिवत।

## दूर पृथ्वी की गंध में

आज रात, दूर पृथ्वी की गन्ध से भर उठा है मेरा बंगाली मन।

एक दिन मौत आकर यदि दूर नक्षत्र तले
अनजानी घास के सीने पर मुझे सो जाने के लिए कर
तब उस घास में, बंगाल की अविरल घास की
सौंफ-सी मृदु गन्ध भरी रहेगी, किशोरी के स्तनों में
पहली बार जननी होने पर जैसे मक्खन तैरता है
पृथ्वी के चारों ओर वही शान्ति रहती है घास आँचल सफ़ेद हाथ स्तन।

यहीं भी आए मृत्यु-यहीं की हो हरी कोमल घास
मुझे रखेगी छिपाकर-घास, रात दोपहर में पक्षी के हृदय
की तरह छाया रहेगा मुझ पर रात का आकाश
नक्षत्र का नीला फूल खिला रहेगा क्या बंगाल का नक्षत्र नहीं ?
नहीं जानता तब भी उनके शान्त स्थिर चित्त में-शान्ति लगी रहेगी
अप्सरा के सीने पर जैसे-आँचल सफ़ेद हंस-जैसे स्तन घन।

## चतुर्दिक् नीरवता भरी सध्या मे

चारों ओर शान्ति और नीरवता भरी सध्या में
मुँह में खर पतवार लिए चुपचाप एक मैना उडती जा रही है
परिचित राह पर धीरे धीरे एक बैलगाडी जा रही है
सुनहरी फूस के दूहों से पटा हुआ है आँगन।

दुनिया भर के उल्लू पुकारते हैं सेमल में
घास में धरती की सारी सुन्दरता दिखाई दे रही है
ससार का सारा प्यार हम दोनों के मन में–
आकाश फैला है शान्ति लिए आकाश आकाश में।

## कट चुका धान

कट चुका धान
खेतों में फैला है फूस
रूख पत्ते साँप की केंचुल
घोंसला, शांत में-
ठहराए हुए हैं।

यहाँ सो रहे हैं कुछ अति परिचित लोग खामोशी से
वह भी यहीं सोयी है-
रात दिन जिसका साथ था
मन में जिसे छला था।

आज यहाँ शान्ति है कि घनी हरी घास-
इन पांगों ने ढक रखे हैं-
उनकी चिन्ता और विश्वास का अँधेरा [illegible]।

## राह चलना

क्या एक मन में सकेत लिये लिये
अकेले अकेले शहर शहर राह दर राह
बहुत चला मैं बहुत देखा सब ठीक ठाक
चलती हैं ट्रामें बसें रात को चुपचाप सडक छोडकर
अपनी नीद की दुनिया में सब खो जाती हैं।

रात भर स्ट्रीटलाइट अपना काम करते हुए जलती है
आकाश के नीचे चुपचाप नीद की कोशिश में
पडे रहती हैं ईंटें घर साइनबोर्ड, झरोखे छत दरवाजे

अकले अकेले चलते हुए
अपने भीतर महसूस करता हूँ इनकी गहरी चुप्पी
रात गये देखता हूँ तारे खण्डहर मीनार की चोटी
सब निर्जनता से घिर गये हैं
लगता है किसी दिन इससे भी अधिक ये चुप दिखेंगे।

और कभी क्या देखा है कि कलकत्ते के ऊपर हज़ारों तारे उगे हुए हैं?
और कलकत्ता किसी स्मारक की तरह दिखाई दे रहा है
आँख झुक आती हैं गुमसुम चुरुट जलता रहता है
हवा और धूल मिट्टी से आँखें मींचे एक ओर खिसक जाता हूँ

पेडों से टूट पडे ढेरों बादामी और पीले पत्ते
अकेले अकेले बेबीलोन की रातों में ऐसे ही फिरता रहा हूँ
क्यों ? मैं नही जानता हजारों व्यस्त सालों के बाद भी।

## बनलता सेन

हजारों साल से राह चल रहा हूँ पृथ्वी के पथ पर
सिहल् के समुद्र से रात के अँधेरे म मलय सागर तक
फिरा बहुत मैं बिम्बिसार और अशोक के धूसर जगत में
रहा मैं वहाँ बहुत दूर अँधेरे विदर्भ नगर में
मैं एक क्लान्त प्राण जिसे घेरे है चारों ओर जीवन सागर का फेन
मुझे दो पल शान्ति जिसने दी वह–नाटोर की बनलता सेन।

केश उसके जाने कब से काली विदिशा की रात
मुख उसका श्रावस्ती का कारु शिल्प–
दूर सागर में टूटी पतवार लिए भटकता नाविक
जैसे देखता है दारचीनी द्वीप के भीतर हरे घास का देश
वैसे ही उसे देखा अन्धकार में पूछ उठी कहाँ रहे इतने दिन?"
चिड़ियों के नीड सी आँख उठाये नाटोर की बनलता सेन।

समस्त दिन शेप होते शिशिर की तरह नि शब्द
आ जाती है सध्या अपने डैने पर धूप की ग ध पोंछ लेती है चील
पृथ्वी के सारे रग बुझ जाने पर पाण्डुलिपि करती आयोजन
तब क़िस्सों में झिलमिलाते हैं जुगनुओं के रग
पक्षी फिरते घर–सर्वस्य नदी धार–निपटाकर जीवन भर की लेन देन
रह जाती अँधेरे में मुखाभिमुख सिर्फ़ बनलता सेन।

# मुझे तुम

मुझे तुमने दिखाया था—एक दिन
विस्तृत मैदान देवदार और पाम के ख़ामोश शिखर
दूर दूर तक फैले
दोपहरी की निर्जन गभीर हवा
चील के डैने के भीतर खो जाते हैं निस्पन्द
और फिर ज्वार की तरह लौटकर एक एक झरोखे
देर तक बतियाते थे।

ऐसा लगता है मानो पृथ्वी जैसे कोई मायावती नदी के पार का देश हो।
फिर बहुत दूर दिखाई दी—
दोपहरी रूपसी हवा में घास पर कोई धान फटकारती
गीत गाती हुई।
लगता है पल पल की दोपहरी में कोई भरापूरा जीवन तैर आया है।
शाम के भीगे भीगे मुहूर्त में
नदी में साभर नीलगाय और हिरणों की छायाओं का आना जाना
मुझे तुमने दिखाई थी—
एक सफ़ेद चीतल हिरणी की छाया
नदी के पानी में पूरी शाम से
मावे से बनी धूसर खीर की मूर्ति की तरह—
स्थिर।

कभी कभार दूर बहुत दूर श्मशान घाट से चन्दन चिता की चिरायँध
आग में घी की गध
शाम असम्भव उदास
झाउ हरीशाल बुझते सूर्य में
अमरूद आँवला देवदार और शाल
हवा के सीने पर स्पृहा उत्साह जीवन का फेन
रात, नक्षत्र और नक्षत्रों के निस्तब्ध अतीत में
सफ़ेद काले छीट के कबूतर का चाँदनी में उडना बैठना छटपटाना
ये सब तुमने मुझे दिखाया था—
उजाले की तरह,
प्रेम की तरह
अकेलेपन की तरह,
मृत्यु बाद के बेहद घने अन्धकार का तरह।

## तुम

नक्षत्रों की गति से चारों ओर उजाला है आकाश में
बहती हवा में नीली नीली दीख रही प्रान्तर की घास
सो रहे हैं केंचुआ और झीप भी नीद में
आम, नीम कटहल के विस्तार में पडी हुई हो केवल तुम
मिट्टी की बहुत तह में खो गई हो या फिर दूर आकाश पार
अँधेरे में क्या सोचती हो तुम ?
यह लो जामुनों के जगल में अकेली कबूतरी बोली
जैसे तुम्हारे अभाव में यह तुम्ही हो।
मेरे इतने करीब आश्विन के विशाल आकुल आकाश में
और किससे इतने सहज, गहरे और अनायास मिलूँगा
कहते ही–
प्रकृतस्थ प्रकृति की तरह प्रेम अप्रेम से दूर
निखिल अधकार के लिए उड गयी चिडिया।

## अन्धकार

घोर अन्धकार की नींद से
नदी के छल छल शब्द से फिर जाग उठा
देखा पाडुर चाँद ने वैतरिणी से अपनी आधी छाया समेट ली–
कीर्तिनिशा की ओर
धानसीढी नदी के किनारे सोया था– पौष की रात–
अब मैं कभी नही जागूँगा अब कभी नही जागूँगा।
ओ नीली कस्तूरी आभा वाले चाँद।

तुम दिन का अजार लो उद्दाम लो स्वप्न लो
भीतर की मृत्यु शान्ति और स्थिरता
और अगाध नींद का जो आस्वाद है उसे तुम बेध कर मार नही सकते
इसलिए तुम प्रदाह प्रवहमान यन्त्रणा लो
पता है चाँद
ओ नीली कस्तूरी आभा वाले चाँद
रात क्या तुम जानती हो
कि मैं बहुत दिनों तक अन्धकार के भीतर अनन्त मृत्यु में घुला मिला
भोर के इस उजाले के उच्छ्वास में अचानक
यह जानकर कि मैं पृथ्वी का हूँ
मैं डरा–

दुख पाया असीम दुर्निवार
पाया रक्तिम आकाश पर–उठकर
सूर्य ने सैनिक वर्दी में दुनिया के आमने सामने
रहने का मुझे निर्देश दिया है
मेरा पूरा हृदय घृणा, वेदना, आक्रोश से भर उठा
देखा कि सूर्य की गरमी से आक्रान्त पृथ्वी ने जैसे
करोड़ों सूअरों के आर्तनाद में उत्सव शुरू कर दिया है
हाय उत्सव।
हृदय के अविरल अँधियारे में सूर्य को डुबोये डुबोये
मैंने फिर सोना चाहा,
अन्धकार के स्तन और योनि के भीतर अनन्त मृत्यु की तरह
घुल मिलकर।

हे नर हे नारी
मैं तुम्हारी पृथ्वी को कभी जान नही पाया
किसी और नक्षत्र का भी नही हूँ मैं।
जहाँ का स्पन्दन सघर्ष गति जहाँ उद्दाम चिन्ता काज
जहाँ सूर्य, पृथ्वी बृहस्पति कालपुरुष अनन्त आकाश ग्रन्थि
सैकड़ों गिद्धों की पुकार
गिद्धिन की प्रसव वेदना का आडम्बर,
ये सब उतारते हैं पृथ्वी की भयावह आरती
और घोर अन्धेरे में नीद के आस्वाद से मेरी आत्मा ललित,
मुझे क्यों जगाना चाहते हो?
हे समय ग्रन्थि हे सूर्य माघ निशीथ की कोयल
हे स्मृति, हे हिम हवा,
मुझे क्यों जगाना चाहते हो तुम सब?

अरबों अन्धकारों की नीद से नदी के छल छल शब्द से
मैं अब कभी जागूँगा नही
धीरे धीरे पौष की रात में धानसीढी के कगार पर
नजर फिरा कर नही देखूँगा कि पीले चाँद ने
वैतरिणी से अपनी आधी छाया कीर्तिनिशा की ओर गुटिया ली है।
कभी नही जागूँगा, अब कभी भी नही जागूँगा
मैं सोया रहूँगा धानसीढी नदी के आसपास

## सुरजना

सुरजना आज भी तुम हमारी पृथ्वी में हो,
पृथ्वी की एक समवयसी लडकी की तरह,
अपनी काली आँखों से देखती हो नीलिमा।

यूनानी और हिन्दू ज्योति के नियमों का रूढ आयोजन
सुना हो फेनिल शब्दों को तिलोत्तमा नगरी की देह पर
क्या क्या चाहा था? क्या पाया है और क्या खोया है।

उमर बढी है अनेकों कई स्त्री पुरुषों की
अभी अभी डूबा है सूर्य नक्षत्र का आलोक
फिर भी सागर नीला है सीप की देह पर अल्पना
एक पक्षी का गान कितना मीठा होता है।
मानव किसी को चाहता है—उसका वही निहत उज्ज्वल
ईश्वर के बदले अन्य किसी साधना का फल।

याद है *कब किसी तारों भरी रात की हवा में*
धर्माशोक के पुत्र महेन्द्र के साथ
जो कोलाहल के सग उतरे थे महासागर के पथ पर
प्राणों में अन्तिम इच्छा लिए।
तो भी मैं किसी को समझा नही पाया था

वह इच्छा सघ की नही, शक्ति की नही  कल्याणकारी सुधियों की करुणा की नही
उससे भी कही अधिक था मानव के लिए मानवी का प्रकाश।
जिस तरह सबके सब अँधेरे समुद्रों के क्लान्त नाविक
मक्खियों की गुजन की तरह एक विह्वल हवा में
भूमध्य सागर में लीन किसी दूरस्थ सभ्यता से–
आज की नयी सभ्यता में लौट आते हैं
तुम उसी अपरूप सिधु की रात में मृतकों की रुदन हो
देह से प्यार करती हो  भोर के कल्लोल में।

## सविता

सविता शायद हमें मनुष्य जन्म मिला है
किसी बसन्त की ही रात
भूमध्य सागर को घेरे जो जातियाँ थी उनके बीच
उन्हीं के साथ
सिन्धु के अँधेरे रास्तों पर किया है गुजन
वहाँ दबी दबी रोशनी थी उस रक्त लोहित रोशनी में
मुक्ता के शिकारी थे
और थी रेशमी दूध की तरह गोरी गोरी नारी।
अनन्त धूप से शाश्वत अन्धकार
की ओर सबके सब अचानक शाम बीतने पर
कही नीरव ख़ामोशी में चले जाते थे।
चारों ओर की नीद सप्तऋषि नक्षत्र की छाया में
मध्य युग का अवसान हो गया–
और इस अवसान को बनाये रखने के लिए
योरप और यूनान बन गये नये सभ्य ईसाई।
फिर अतीत से उठकर मैं तुम और वे आगे चले–
सिन्धु की रात के जल को भी याद होगा
कि नई दुनिया की तरफ़ आधे आगे चलते थे
कैसा तो अनन्योपाय होने के आह्वान पर

हम लोग आकुल हो उठकर
मनुष्य को मनुष्य की व्यक्तिगत उपलब्धि पर पुरस्कृत किया जायेगा
आदि आदि सहमति के बावजूद
पृथ्वी की मृत सभ्यता में
जाते ही थे सागर के स्निग्ध कलरव में।

अब एक दूसरी रोशनी जलती है पृथ्वी पर
कैसी तो एक अपव्ययी अक्लान्त आग।
और न जाने तुम्हारे घने काले केशों में
कब का समुद्र का लवण
तुम्हारे मुख की रेखा में आज भी कितने मृत
ईसाई पादरियों के चेहरे
दिखाई देते हैं
सुबह के उगते सूर्य की तरह
बहुत क़रीब, पर बहुत दूर।

## सुचेतना

सुचेतना, तुम बहुत दूर शाम के नक्षत्र के क़रीब
एक द्वीप हो,
जहाँ दालचीनी बाग के एक हिस्से में
केवल निर्जनता बसी हुई है।
इस ससार में युद्ध ख़ून और जीत
सत्य है, पर केवल यही सत्य नहीं
एक न एक दिन कलकत्ता में भी होगा युद्ध
पर मेरा मन तुम्हारे लिए ही रहेगा।
आज तक बहुत कड़ी धूप में फिरता रहा प्राण
आदमी को आदमी की तरह प्यार करने जाकर
पाया है मैंने शायद मेरे ही हाथ मर गये सारे जन
भाई बन्धु परिजन।
पृथ्वी के भीतर अन्दर तक बीमार है
फिर भी आदमी पृथ्वी का क़र्ज़दार है
शवों की फ़सल लादे लादे
जहाज़ आता है हमारे शहर के बन्दरगाह पर
धूप में शव से फैलता है सुनहला विस्मय
जिसने हमारे पिता बुद्ध कन्फ्यूशियस की तरह
हमें भी मूक किये रखा है

लोग, और खून दो की गुहार लगाये हैं।
सुचेतना तुम्ही रोशनी हो–
मनीषीगण इसे जानने में अभी शताब्दी लगायेंगे।

ये हवा जितनी परम सूर्य किरण से उज्ज्वल है
हमारे जैसे दुखी दुखविहीन नाविक के हाथों
मानव को भी उतना ही सुन्दर गढना है
आज नही तो अन्तिम प्रहर आने तक।
मुझ में मिट्टी और पृथ्वी को पाने की बडी साध थी
जनमूँ या न जनमूँ की दुविधा में था
कि फिर जन्म लेकर जो लाभ है वह सब समझा
कि ठडी देह छूकर उजली भोर में पाया
जो नहीं होना था–वही होता है आदमी का और वही होगा–
शाश्वत रात की छाती में सब वही
अनन्त सूर्योदय।

## शव

भीग रही है रुपहली चाँदनी, उस खर पतवार के भीतर
हजारों मच्छरों ने बनाया है घर वहीं पर

सोनमछली जहाँ खाती है कुदुर कुदुर
मौन प्रतीक्षारत जहाँ रहते हैं नीले मच्छर

निर्जन जहाँ मछली के संग सा हो रहा चुपचुप
पृथ्वी के दूसरी ओर एकाकी नदी का गाढा रूप

कान्तार की एक तरफ़ नदी के जल को
बावला[1] कास पर सोये सोये देखता है केवल,

साँझ को बलछौंहे मेघ नक्षत्र रात का अन्धकार
जैसे विशाल नीला जूड़ा बाँधे किसी नारी का हिलता सर

पृथ्वी की अन्य नदी पर यह नदी
लाल मेघ पीली चाँदनी भरी इसे गौर से देखो अगर

---

1 जंगली घास

दूसरी कोई रोशनी और अन्धकार यहाँ नहीं रही
लाल-नील और सुरमई मेघ म्लान नील चाँदनी ही

यहीं पर मृणालिनी घोष का शव
तिरता चिरदिन नीला, लाल, रुपहला, नीरव।

## हाय चील

हाय चील, सुनहले डैने की चील इस भीगे मेघ की दुपहरी में
रो रो और उडो नही तुम धानसीढी नदी के आसपास
तुम्हारे गीले स्वर में बेंतफल सी उसकी म्लान आँख याद आता है
उसकी जो किसी राजकन्याओं की तरह रूप धरे पृथ्वी से दूर चली गयी है
फिर क्यों लाते हो बुला ? जी को कुरेद कौन चाहता है घाव जगाना
हाय चील, सुनहले डैने की चील इस भीगे मेघ की दुपहरी में
रो रो उडो नही तुम धानसीढी नदी के आसपास

## सिन्धुसारस

दो एक घडी के लिए ही धूपसागर की गोद में सिर्फ़ तुम और मैं
हे सिन्धु सारस
मालाबार पहाड की गोद छोडकर सुदूर लहरों के जगले में उतरता हूँ
रहस्य की टरैनटैला–नाच रही है, मैं इस सागर किनारे चुपचाप स्तब्ध
देखता रहता हूँ बर्फ़ जैसे सफ़ेद डैने–आकाश की देह पर
धवल फेन की तरह नाच उठकर पृथ्वी को आनन्द जताते हैं।

मिट जाते हैं पहाडों के शिखर से गिद्धिनी के काले गीत
फिर बीतती रात, हतश्वास, फिर तुम्हारे गीतों ने रचे
नया सागर उजली धूप हरी घास जैसे प्राण
पृथ्वी की क्लान्त छाती में फिर तुम्हारे गीत
शैल गह्वर से अँधेरी तरंग का करता है आह्वान।

जानते हो बहुत युग बीत गये हैं? मर गये अनेकों नृपति?
सोने के बहुत धान झर गये हैं जानते हो क्यों? बहुत गहरी क्षति
हमें थका गयी है–खो दिया है आनन्द का चलन,
इच्छा, चिन्ता स्वप्न, व्यथा, भविष्य वर्तमान–यह वर्तमान
विरस गीत गा रहे हैं हमारे हृदय में, वेदना की हम सन्तान?

जानता हूँ पक्षी सफ़ेद पक्षी मालाबार के फेन की सन्तान,
तुम पीछे नही देखो तुम्हारा कोई अतीत नहीं, स्मृति नहीं
छाती में नही है आकीर्ण धूसर
पाण्डुलिपि पृथ्वी के पक्षियों जैसी नही है जाडे का दश और कुहासे का घर।
जो रक्त बहा उसी के स्वप्न में बाँधा कल्पना का निस्सग प्रभात नहीं है–
नही है निम्नभूमि नही आनन्द के अन्तराल में प्रश्न और चिन्ता का आघात।

स्वप्न तुमने देखा तो नही–पृथ्वी के सारे रास्ते, सारे सागर किसी एकान्त में
विपरीत द्वीप में दूर मायावी के दर्पण में भेंट होती है
रूपसी के साथ अकेला सध्या नदी की लहर में आसन्न कथा की तरह
एक रेखा उसके प्राण में–म्लान केश आँखें उसकी लता वन की तरह काली
एक बार स्वप्न में उसे देख लेती हैं पृथ्वी की सारी रोशनी।

डूब गया जहाँ स्वर्ण मधु खत्म हो गई जहाँ करती नही रसोई
मक्खी और हल्दी पत्तों की गन्ध से भर उठी है अविचल मैनी का मन,
मेघ की दोपहर तैरती है–सुनहली चील की छाती में मचता है उन्मन
अहा मेघभरी दुपहरी में, धानसीढी नदी के पास
वहाँ आकाश में और पृथ्वी की घास में कोई नही।

तुम इस निस्तब्धता को पहचानती हो या कि रक्त के रास्ते पर पृथ्वी की धूल में
पता है काछी विदिशा की मुखश्री मक्खी जैसी झरती है,
सौन्दर्य ने हाथ रखा है अन्धकार और मुख के विवर में
गहरे नीलतम चाहत और कोशिश मनुष्य की–इन्द्रधनुष पकडने का क्लान्त आयोजन
हेमन्त के कुहासे में मिट रहे हैं–अल्पजीवी दिन की तरह।

ये सब जानते हो क्या–प्रवाल पजर में घिरकर डैनों के उल्लास में
धूप में झिलमिलाते हैं सफ़ेद डैने सफ़ेद फेन बच्चों के पास

हेलिउट्रोप जैसे दोपहर के असीम आकाश में।
जगमगाते हैं धूप में बर्फ़ की तरह सफ़ेद डैने
जबकि हम पृथ्वी के स्वप्न और चिन्ताएँ सब
उनके लिए अपरिचित और अनजाने हैं।

चचल घास के नीड में कब तुमने जन्म लिया था
विषण्ण पृथ्वी छोडकर झुड उतरे थे सारे
अरब सागर में और चीन सागर में-
सुदूर भारत के सागरों के उत्सव में।

शीतार्थ इस पृथ्वी की आमरण चेष्टा, क्लान्ति और विह्वलता भूलकर
कब उतरे थे नील सागर के नीड में।

धान के रस की बातें हैं पृथ्वी-इसकी नरम गन्ध
पृथ्वी की शखमाला नारी है वही-और उसके प्रेमी का म्लान
निस्सग मुख का रूप सूखे तृण की तरह उसका प्राण
नहीं जानते, कभी भी नहीं जानेंगे, बस कलरव करते उड जाते हैं-
शतस्निग्ध सूर्य वे, शाश्वत सूर्य की तेज़ गति से

## बीस साल बाद

बीस साल बाद अगर उससे हो जाए मुलाक़ात।
शाम की पीली नदी में कौवे जब घर फिरते हों तब,
जब घास पात नरम और हल्की हो जाए।
या जब कोई न हो धान खेत में
कही भी आपाधापी मची न हो
हसों और चिड़ियों के घोसलों से जब गिर रहे हों तिनके
मनियार के घर रात हो शीत हो और जब शिशिर की नमी झर रही हो।

जीवन कर गया है बीस साल पार–
ऐसे में तुम्हें पा जाऊँ माठी राह एक बार।
हो सकता है आधा रात का जब चाँद उगा हो
शिरीष या जामुन झाऊ या आम के
पत्तों के गुच्छों के पीछे
काले कोमल डाल पात झाँकती तुम आ जाओ
क्या बीस साल पहले की तुम्हें कुछ नहीं याद!
जीवन कर गया है बीस साल पार
और ऐसे में अगर मुलाकात हो जाए एक बार।

तब शायद झपटकर उल्लू मैदान पर उतर पड़ें–
बबुआ की गली के अन्धकार में

अश्वत्थ के जगले के फाँक में
कहाँ छुपाऊँ आपको ?
पलक की तरह झुककर छुपूँ कहाँ चील का डैना थाम कर–
सुनहली–सुनहली चील–शिशिर का शिकार कर
जिसे ले गयी उसे
बीस साल बाद उसी कोहरे में
अगर मुलाक़ात हो जाए।

## घास

कच्चे नीबू के पत्तों सी नरम मुँगिया रोशनी से
भर गयी है पृथ्वी की भोर बेला

कच्चे बातावी[1] नीबू सी हरी घास उसी की चारों ओर गन्ध
हिरणों का झुंड उसे टूंग रहा है।

मेरी भी इच्छा होती है घास की इस गन्ध को
हरे मद का तरह भर भर गिलास पान करूँ

इस घास की देह को छानूँ
इस घास की आँख में अपनी आँखें मलूँ
घास की पाँखें मुझे पालें पोसें

मेरी इच्छा होती है–
घास के भीतर–
किसी निविड घास माता की
देह के सुस्वाद अन्धकार से
घास के रूप में जन्म लूँ।

---

1 अपनी सुगध के लिये प्रसिद्द विशेष प्रकार का नींबू।

## तेज हवा की रात

कल की रात तेज हवा के झोंकों भरी रात थी–असख्य नक्षत्रों की रात
सारी रात अपार हवा मेरी मच्छरदानी उडाती रही
मच्छरदानी कभी फूल उठी, मौसमी समुद्र के पेट की तरह
कभी बिस्तर छोडकर नक्षत्रों की तरफ़ उड जाना चाहा उसने
आधी नीद में लगता–
शायद मच्छरदानी मेरे सर पर नही
स्वाति तारे की गोद से रगड खाती हवा के नील सागर में
सफ़ेद बगुले की तरह वह उडी।
ऐसी अद्‌भुत रात थी कल की रात।

मरे हुए नक्षत्र कल जीवित हो उठे थे–आकाश में तिलभर रखने की जगह न थी
पृथ्वी के लुप्त प्राय मृतकों का धुँधला चेहरा भी मैंने उन्ही नक्षत्रों में देखा
रात के अन्धकार में अश्वत्थ के शिखर पर प्रेमी चील पुरुषों से
शिशिर से भीगी आँख की तरह झिलमिला रहे थे तारे
चाँदनी रात में बेबीलोन की रानी की देह पर
चीते की चमकीली खाल की शाल सा चमक रहा था–विशाल आकाश!
ऐसी अद्‌भुत रात थी कल की रात।

जो नक्षत्र आकाश की छाती पर हज़ारों साल पहले मर गये थे
वे भी कल जँगले के भीतर से असख्य मृत आकाश साथ लेकर आये थे
जिन जिन रूपसियों को मैंने एशिया मिस्र विदिशा में मरते देखा

कल वे सब सुदूर दिगन्त पर कोहरे में लम्बे भाले
हाथ में लिये कतार में खडे हो गये थे–
मृत्यु को हराने?
या जीवन की जीत जताने के लिए?
या प्रेम की भयावह गम्भीर स्तब्धता भूलने के लिए?

एक गहरे नीले अत्याचार ने मुझे फाडकर रख दिया कल रात
विरामहीन आकाश के विस्तृत डैनों के भीतर
पृथ्वी कीडे की तरह मर गयी थी आकाश की छाती से उतरकर
मेरे जँगले के भीतर सायँ सायँ करती
सिह की गर्जना से भयभीत हरे प्रान्तर में सैकडों जेबरों की तरह।

मेरे अतर में भर आयी विस्तृत फिलिट की हरी घास की गन्ध
दिगन्त प्लावित हो आया तीखी धूप की गन्ध से मानो
मिलनोन्मत्त बाघिनी की गर्जना– अन्धकार चचल विराट
जीवन के कठोर नील प्राण को लेकर
मेरा रोम रोम जाग उठा।
मेरा हृदय पृथ्वी छोड
एक नक्षत्र को माथे पर उठाये तारों तारों में उडाकर ले जाते
एक गिद्ध की तरह–
हवा के नीले सागर में स्फीत पागल गुब्बारे की तरह उड गया।

## वनहस

घुग्घू के धूसर पख उड जाते हैं नक्षत्र के प्राणों में--
भीगे खेत छोड चाँद के बुलावे पर
बनहस खोलते हैं पाँख उनके शब्द सुनता हूँ सायँ सायँ
एक दो तीन चार अजस्र अपार
रात के किनारे गुस्से से डैना झाडते।

दो तीन इजन की आवाज में भागते भागते
पडा रहता फिर नक्षत्र का विशाल आकाश
हस देह की गन्ध और दो एक कल्पना के हस
याद आता है बहुत पहले मुहल्ले टोले की अरुणिमा सन्याल का चेहरा
उडते उडते वे पौष की चाँदनी में नीरव
पृथ्वी की सारी ध्वनियाँ और सारे रगों के मिट जाने पर
हृदय में शब्दहीन ज्योत्स्ना के भीतर
उडते हैं कल्पना के हस।

## शख माला

ऊबड खाबड पथ के पीछे और सध्या के अन्धकार में
कौन, एक नारी      आकार जिसने मुझे पुकारा
बोली बेंतफल सी नीली तुम्हारी दो दुखी आँखें मैं पाना चाहती हूँ।
नक्षत्रों में कुहासे की पाँख में
वहाँ भी साँझ की नदी में,
जहाँ उतराती है जुगनुओं की देह से रोशनी
धूसर घुग्घू की तरह डैने फैलाये
घुली मिली गन्ध के अन्धकार में
धानसीढी नदी में तैर तैर
सुनहली धान की सीढियों में धान के हर खेत में
मुझे खोजती रही है अकेली घुग्घू की तरह
घुग्घू के प्राणों की तरह
दिखलायी पडी चहचहाती चिडियों के रग में सराबोर
वही घुग्घू, जो साँझ–अँधेरे भीगे शिरीष पर
दिखाई देता है      वही
जिसके ऊपर सींग जैसा टेढा चाँद उगता है
कौड़ी जैसा सफ़ेद है जिसका मुँह
दोनों हाथ हिम
आँखों में कटहल की लकडी जैसी लालिमा

मानो चिता जलती है दक्षिण की ओर सिर किये
हाय जैसे शखमाला आग में जल रही हो
उसकी आँख में शताब्दियों का नीला अन्धकार
उसका स्तन नुकीले शख जैसे दूध से भी मीठा
वह शखमालिनी
दोबारा नही मिली
एक ही बार मिली थी वह पृथ्वी को

## बिल्ली

दिन भर घूम फिर कर केवल मेरा ही
एक बिल्ली से सामना होता रहता है,
पेड की छाँह में धूप के घेरे में
बादामी पत्तों के ढेर के पास,
कही से मछली के कुछ काँटे लिए
सफ़ेद माटी के एक कंकाल सी
मन मारे मधुमक्खी की तरह मग्न बैठी है
फिर कुछ देर बाद गुलमोहर की जड पर नख खरोंचती है।

दिन भर सूरज के पीछे पीछे वह लगी रही
कभी दिख गई
कभी छिप गई।

उसे मैंने हेमन्त की शाम में
जाफ़रानी सूरज की नरम देह पर
सफ़ेद पजों से चुमकार कर
खेलते देखा।

फिर अन्धकार को छोटी छोटी गेंदों की तरह
थपिया थपिया कर
उसने पृथ्वी के भीतर उछाल दिया।

## शिकार

भोर–
आकाश का रग घासपतगे की देह सा नरम और नीला
चारों ओर अमरूद और झीगे के पेड तोते के पख जैसे हरे।
गाँव टोले के चौपाल पर बैठी किसी भोली लडकी की तरह
एक तारा अभी भी आकाश में है
या कि मिस्र की मानुषी ने अपने वक्ष की
जो मुक्ता मेरे नीले मद के गिलास में डाली थी
वैसा ही एक तारा अभी भी जल रहा है
हज़ारों साल पहले की एक रात में उसी तरह–
बर्फ़ीली रात में देह गरमाये रखने के लिए
गाँव वाले रात भर मैदान में जो आग जलाये थे–
मोरग फूल की तरह लाल लाल आग
सूखे अश्वत्थ के मुडे पत्तों में अभी भी उनकी आग जल रही है
सूर्योदय में उसका रग अब कुमकुम की तरह नही
हो गया है–मैनी के सीने में विवर्ण इच्छा की तरह
भोर की रोशनी में शिविर के चारों ओर–टलमल
मोर के हरे नीले पखों जैसे
आकाश और जगल कौंध है।
भोर–

सारी रात चीताबाघिन के हाथ से स्वय को बचाये बचाये
नक्षत्रहीन मेहग्नी अन्धकार में सुन्दरी के वन से
अर्जुन के जगल में भागते भागते
सुन्दर बादामी हिरण इस भोर की राह देख रहा था
आया है वह भोर के उजाले में उतरकर
खा रहा है कच्चे बातावी सी सादी सुगन्धित घास।

नदी की तीक्ष्ण कँपकँपाती लहर में वह उतरा–
निद्राहीन थका विह्वल देह को स्रोत की तरह आवेग देने के लिए
अन्धकार की ठडी सिकुडी नसें तोडकर
भोर की रोशनी में विस्तीर्ण उल्लास पाने के लिए
नीले आकाश तले सूर्य की सुनहरी वर्षा में जगकर
साहस से साधता है सौन्दर्य, हिरणी दर हिरणी को रिझाने के लिए।
अजब एक चिरती हुई आवाज गूँजती है।
नदी का जल मचका[1] फूल की तरह लाल हो उठा
आग जला उष्ण हरिण का मास पक आया लाल लाल
नक्षत्र के नीचे घास के बिछौने पर बैठे बैठे
नये पुराने किस्से
सिगरेट का धुआँ
कई पसरे लोगों की पेशानियाँ
इधर उधर बिखरी पडी बन्दूकें
बर्फ़ सी खामोश और बेगुनाह नीद ?

---

1 एक लाल बड़े फूल का नाम।

## नग्न निर्वसन हाथ

रोशनी की रहस्यमयी सहोदरा सा
आकाश में प्रगाढ हो उठा है अन्धेरा
जिसका चेहरा तक नही देखा
जिसने सदियों से मुझे चाहा
उस नारी की तरह
फागुन के आकाश में निविड हो उठा है अन्धेरा।

स्मृति खनकनी है–भीतर कोई एक खोई हुई नगरी की
भारत के तीर पर     उस धूल धूसर महल की
या कि जो था भूमध्य सागर के कगार पर
या सिन्धु के पास
आज नही है लेकिन कभी थी वह नगरी
कीमती असबाबों से भरा कोई एक महल था
ईरानी गलीचे, कश्मीरी नमदे
नदी की तरग से निकला एक साबुत मोती प्रवाल आच्छादित
मेरा विलुप्त मन मेरी मरी आँखें मेरी खोयी स्वप्नाकाक्षा
और नारी तुम
किसी समय एक दिन यह सब कुछ था।

सतरे के रग लिए ढेर सारी धूप
ढेरों पहाडी तोते और कबूतर
थे महोगनी की छाया में पल्लव ही पल्लव
सतरे के गाढे चमकते रग की धूप
और तुम

शताब्दियों से तुम्हें देखा नही
ढूँढा तक नही
लेकिन आज फागुनी अँधेरा ले आया है
उसी समुद्र पार की कहानी
अपरूप महल और गुम्बदों की पीडा रेखा
और नाशपाती की खोयी गध
हजारों हिरनों और बघछल्लों वाली धूसर पाण्डुलिपियाँ
इन्द्रधनुषी शीशे के झरोखे
पर्दे पर्दे पर भोर की रगीन चमक
कमरे और कमरों से और दूर कमरे और कमरों के भीतर
क्षणिक आभास–
जीर्ण स्तब्ध और आश्चर्य !
पर्दे के गलीचे पर लाल धूप का बिखरा स्वेद
गिलास में लाल तरबूजों का रस
नग्न निर्जन हाथ तुम्हारा
तुम्हारा नग्न निर्वसन हाथ

## एक दिन आठ साल पहले

सुना चीर फाड घर
ले गये हैं उसे
कल फागुन की रात के अधेरे में
जब डूब चुका था पचमी का चाँद
तब मरने की उसे हुई थी साध,
पत्नी सोई थी पास–शिशु भी था
प्रेम था आस थी–
चाँदनी में तब भी कौन सा भूत देख लिया था
जो उसकी टूट गयी नीद ?
या बहुत दिनों से आ नही रही थी नीद–
इसलिए चला आया चीर फाड घर में नीद लेने अब।
पर क्या चाही थी उसने यही नीद !

महामारी में मरे चूहों की तरह
मुँह से खून के थक्के उगलता कन्धे सिकोडे छाती में अधेरा भरे
सोया है इस बार कि फिर नही जागेगा कभी एक भी बार।
जानने की गहरी पीडा
लगातार ढोता रहा जो भार
उसे बताने के लिए
जागेगा नहीं एक भी बार

यही कहा उसे–
चाँद डूबने पर अद्भुत अंधेरे में
उसके झरोखे पर
ऊँट की गर्दन जैसी
किसी निस्तब्धता ने आकर।
उसके बाद भी जगा हुआ है उल्लू।
भीगा पथराया मेंढक उष्ण अनुराग की कामना से
प्रभात के लिए दो पल की भीख माँग रहा है।

सुन रहा हूँ बेरहम मच्छरदानी के चारों ओर
भिनभिनाते मच्छर अँधेरे में
संग्राम करते जीवित हैं–
जीवन स्रोत को प्यार करके।

खून और गन्दगी पर बैठकर धूप में उड जाती है मक्खी
सुनहली धूप की लहर में कीडों का खेल
जाने कितनी कितनी बार देख चुका हूँ।
सघन आकाश या किसी विकीर्ण जीवन ने
बाँध रखा है इनका जीवन
शैतान बच्चे के हाथ में पतंगे की तेज सिहरन
मरण से लड रहा है
चाँद छिपने पर गहरे अँधेरे में
हाथ में रस्सी लेकर अकेले गये थे तुम अश्वत्थ के पास
यह सोचकर कि मनुष्यों के साथ में
कीडे और पक्षी का जीवन नहीं मिलेगा।

अश्वत्थ की शाख ने
नहीं किया प्रतिवाद? क्या जुगनुओं के झुण्ड ने आकर

नहीं किया सुनहले फूलों का स्निग्ध झिलमिल ?
धुरधुरे अन्ध घुग्घू ने आकर
कहा नही क्या–"बूढा चाँद बाढ में बह गया क्या ?
बहुत अच्छा !
अब दबोच लूँ दो एक चूहे।'
बाँचा नही घुग्घू ने आकर यह प्रमुख समाचार ?
जीवन का यह स्वाद–पके जौ की गन्ध सनी
हेमन्त की शाम–
असह्य लगी तुम्हें
तभी चले आये हो ठडे घर में कुचल कर मरे चूहे के रूप में।

सुनो तब भी इस मृतक की कहानी–
यह किसी नारी के प्रेम का चक्कर नही था
विवाहित जीवन की चाह थी
ठीक समय पर एक जीवनसगिनी
खुद ही आ गयी।

ग्लानि से हड्डी टूट जाए या दुख से मर जाए
ऐसा कुछ नही था उनके जीवन में
जो चीरफाड घर में
तख्त पर चित
आ लेटता।

इन सबके बाद भी जानता हूँ
नारी का हृदय प्रेम शिशु घर ही सब कुछ नहीं है
धन नहीं, मान नहीं सदाचार ही नहीं

सिर्फ़ विपन्न विस्मयता ही हमारे
खून में खेल रचाया करती है
क्लान्ति हमें थकाती है
यही क्लान्ति वहाँ नहीं है
इसलिए लाश घर की
मेज पर चित पड़ा सोया है।
तब भी रोज रात को देखता हूँ आहा
अश्वत्थ की डाल पर थरथर काँपता अन्धा घुग्घू–

आँख पलटाये कहता है–
"बूढ़ा चाँद! बाढ़ में बह गया?
अच्छा।
अब दबोच लूँ दो एक चूहे।"
हे आत्मीय पितामह आज करो चमत्कार?
मैं भी तुम्हारी तरह बूढ़ा हो जाऊँ और इस बूढ़े चाँद को
पहुँचा कालीदह की बाढ़ के पार
हम दोनों मिलकर शून्य कर जायेंगे जीवन का प्रचुर भंडार।

## आकाशलीना

सुरजना, मत जाना वहाँ
उस लडके से नही बतियाना
तारों की रुपहली आग भरी रात में
तुम लौट आओ सुरजना

दूर दूर बहुत दूर उस लडके के साथ नही जाना
लौट आओ, लहरों पर–इस मैदान में–
मेरे हृदय में,

आकाश में आकाश की आड लेकर
क्या बातें करती हो ? क्यों साथ रहती हो ?
अरे उसका प्रेम तो केवल मिट्टी है
जिसमें केवल उगती है घास।

सुरजना !
हवा से परे की हवा–
आकाश के उस पार का आकाश।
उसी तरह तुम्हारा हृदय भी है आज महज़ घास।

# घोड़ा

मर नही गये हैं आज भी हम लोग–पर केवल दृश्य की तरह जन्मते हैं
महीन[1] के घोडे घास खाते हैं कार्तिक की ज्योत्स्ना के प्रान्तर में।
प्रस्तर युग के घोडे लगते हैं–सब–अभी भी चारे के लोभ में
चरते हैं–पृथ्वी के विचित्र डाईनामों के ऊपर।
अस्तबल की गन्ध तैर आती है एक गहन रात की हवा में
सूखे विषण्ण खर के शब्द झरते हैं इस्पात की चारा मशीन पर

चाय की कई ठडी प्यालियाँ खीर के रेस्तरा के पास
बिल्ली के बच्चे की तरह नीद में–
खाजवाले कुत्ते के साम्राज्य में आते ही हिल उठी।

समय की निओलिथ स्तब्धता की ज्योत्स्ना की प्रशान्त फूँक से
पैराफिन लालटेन बुझ जाती है घोडों के गोल तबेले में।

---

1 एक जगह का नाम।

## समारूढ

अच्छा तो फिर तुम्ही लिखो एक कविता–
बोला–म्लान हँसी के साथ, छाया पिण्ड ने दिया नही उत्तर
समझा कवि तो वह है नही हास्यास्पद है यह
पाण्डुलिपि, भाष्य टीका, स्याही और कलम ऊपर
बैठा है सिहासन पर कवि नही–अजर, अक्षर
दतहीन अध्यापक जिसकी आँख में विवशता भरी कीच
हजार रुपये माहवार और डेढ एक हजार
मृत कवियों का हाड मास खोदकर कमाने वाला
जबकि वे सारे कवि भूख प्रेम और आग की सेंक चाह कर
शार्क की लहरों पर हुए थे लोट पोट।

## निरकुश

मलय सागर के पार एक बन्दर है श्वेतागनियों का
इस पर कि मैंने समुद्र पृथ्वी पर बहुत देखा है–
नीलाभ पानी की धूप में क्वालालम्पुर जावा सुमात्रा इण्डोचीन बाली
बहुत घूमा मैं–उसके बाद यहाँ देखता हूँ बादामी मलयाली
समुद्र की नील मरुभूमि देखकर रोते हैं पूरे दिन।

सादे सादे छोटे घर–नारियल कुज के भीतर
दिन के वक्त और गाढे सफ़ेद जुगनू की तरह झिलमिलाते हैं
श्वेताग दम्पत्ति वहाँ समुद्री केकडे की तरह
समय पुहाते हैं मलयाली डरते हैं भ्रान्तिवश
सागर की नील मरुभूमि देखकर रोते हैं पूरे दिन।

कारोबार से बातें कर–शताब्दी के अन्त में
अभ्युत्थान शुरू हुआ यहाँ नीले सागर के कमर के हिस्से पर

व्यापार के विस्तार में एक रोज
चारों ओर पाम के पेड–दारू का घोल–वेश्यालय सँको किरासन
समुद्र की नील मरुभूमि रोकता रहता है पूरे दिन।

पूरे दिन सुदूर धुएँ और धूप का गरमी से चिढकर
उनचास पवन फिर भी बहती है मस्त होकर विकीर्ण हवा–

नारिकेल कुंज में सफ़ेद सफ़ेद घरों का रहती ठंडा लिए
लाल कंकर का पथ गिर्जा का रक्तिम मुण्ड दिखाई देता है हरे फाँक से
समुद्र की नाल मरुभूमि देखती है नीलिमा में लीन।

## गोधूलि सन्धि का नृत्य

दर दालान की भीड में पृथ्वी के छोर पर
जहाँ खामोशी टूटी पडी है
वही ऊँची ऊँची हरित लताओं के पीछे
हेमन्त की साँझ का गोल गोल सूर्य–उगता है रगीन–

आहिस्ते आहिस्ते डूबता है–चाँदनी में
पीपल के पेड पर बैठकर अकेला उल्लू
रहता है देखता–सोने की गेंद की तरह सूर्य और
चाँदी के डिब्बे से चाँद का जाना पहचाना चेहरा

हरित की शाखा के नीचे जैसे हीरे का स्फुलिग
और स्फटिक की तरह साफ़ जल का उल्लास
नरमुण्ड की अवछाया–निस्तब्धता–
बादामी पत्तों की गध मधुकूपी घास।

कई एक स्त्रियाँ दिव्य और दैवी
पुरुष उनके, कर्म रत नवीन के लिए
जूडे के बालों में–नरक के नवजात मेघ
पाँव तले हागकाग की घास रौंदने का स्वर

वहाँ एकान्त जल म्लान होकर फिर हीरा बनता है,
पत्तों के गिरने का कोई शब्द नही,
फिर भी वे टेर पाते हैं तोप के स्थविर गर्जन से
हो रहा है तबाह शाघाई।

वहाँ यूथचारी कई एक नारी
गहरे चाँद के नीचे आँख और केश के सकेत सोचती हैं
मेधाविनी कि देश और विदेश के पुरुष
युद्ध और व्यापार के खून में, अब नहीं डूबेंगे।

प्रगाढ चुम्बन क्रम से खीच रहे हैं उन्हें
रूई के तकिये पर सर रखकर मानवीय नीद में-
कोई स्वाद नही है, इस झुकी पृथ्वी की मैदानी तरग में
उस चूर्ण भूखण्ड हवा में-वरुण में।
क्रूर पथ ले जाती है हरीतकी वन में-ज्योत्स्ना में।
युद्ध और व्यापार की चहल पहल भरे धूप के दिन
बीत गये हैं सब जूडे में टँका है नरक का गूँगा मेघ,
हर कदम पर-वृश्चिक कर्क-तुला मीन।

## एक कविता

पृथ्वी और प्रवीणा हा गया है मेरुजन नदी के किनारे
विवर्ण प्रासाद अपनी छाया डालता है जल में।
उस प्रासाद में कौन रहते हैं? कोई नहीं-एक सुनहरी आग
पानी की देह पर हिलती डुलती है किसी मायावी के जादूबल से।

वह आग जलती है।
वह आग जलती जा रही है।
वह आग जलेगी-पर कुछ भी नही जलता
उसी निर्मल आग में मेरा हृदय
मृत एक सारस की तरह है।

पृथ्वी का राजहस नही-
निबिड नक्षत्र से समागत
सध्या नदी के जल में एक झुड हस-और उनमें अकेला
यहाँ कुछ नही मिलने पर करुण पख लिए
व चल जात हैं सादा निसहाय
एक मूल सारस से वहाँ हुई थी मेरी मुलाकात।

(दो)
रात के बुलावे पर नदी जितनी दूर चली जाती है-
अपना अभिज्ञान लेकर

मेरी नाव में भी उतनी बाती जलती है,
लगता है यहाँ जनश्रुति का आँवला पा गया हूँ
अपनी हथेली में
सारी किरासन आग बन कर पानी में बहा जाती है आभा
किसी मायावी के जादूबल से।
पृथ्वी के सैनिकगण सो रहे हैं राजा बिम्बिसार के इंगित पर–

बहुत गहरी अपनी भूमिका के बाद
सत्य सारा समय सोने की वृषभ मूर्ति बना भागता फिरता है सारे दिन
जैसे हो गया हो पत्थर
जो युवा सिहीगर्भ में जन्म पाकर कौटिल्य का सयम पाये
वे सब के सब मर गये।
जैसे सब पर चले गये नीद में जैसे नगर खाली कर
सारी गदगी बाथरूम में फेंककर
गम्भीर निसर्ग आभास देकर सुने हुए विस्मृति की
निस्तब्धता तोड देता,
अगर एक भी मनुष्य पास होता,
जो शीशे पार का व्यवहार जानता है,
वही द्वीप पैराफिन–
रेवा मछली तली जाती है तेल में
सम्राट के सैनिकगण प्यारी और नमकीन चीज खायेंगे जग कर उठकर
सवेदनशील कुटुम्बी जानते हैं–
आदमी अपने बिछौने पर बीच रात मनमौजी खोपडी में
कहाँ आघात करेगा किस जगह ?
हो सकता है निसर्ग से महारानी आकर कभी बतायें
पानी के भीतर अग्नि का अर्थ।

## नाविक

नाव चली गयी है क्षितिज पर-यही सोचकर
निद्रासक्त होने जाकर भी वेदना से जाग उठता है परास्त नाविक
सूर्य और भी परम पराक्रम हो उठा है-सैकत के पीछे
बन्दरगाह का कोलाहल सीधे खडे ताड के पेड फिर उसके पार सब कुछ स्वाभाविक।

स्वर्गीय पक्षी के अण्डे सा सूरज सुनहले केश वाली नन की आँख में
गौ झुड चरते खेत दर खेत आम किसानों के खेलने की चीज
इसके बाद अधेरे कमरों में थके हुए नरमुण्डों की भीड
बल्लम की तरह तेज चमक के भीतर निराश्रय पडे रहते हैं।

आश्चर्य सोने की तरफ़ तकता रहता-निरन्तर द्रुत उन्मीलन से
जीवाणु उडे जाते हैं-देखते रहते हैं-किसी एक विस्मय के देश में-
हे नाविक हे नाविक तुम्हारी यात्रा सूर्य को कहाँ तक लक्ष्य करती है?
बेबीलोन निनेभ मिस्र चीन के मन दरपन में फँसकर।

एक और समुद्र में चल जाते हो-दोपहर
वैशाली से वायु-गेत्सिमिन-सिकन्दरिया
मोम की लौ है पीछे पडे हुए कोमल सकेतों की तरह
वे भी सैकत। फिर भी तृप्ति नही। और भी दूर हृदय में चक्रवात की चाह

रह गया है प्रयोजन जितने दिन पथराये पँख खोले ततैयों की भीड
उड जाते हैं लाल धूप में, हवाई जहाज से तेज गति से रसीले सारस
भ्रम का बुना हुआ नीला पर्दा हटा दे तो स्वय मानव हृदय का
उज्ज्वल घडी है–नाविक–बहता हुआ अनन्त पानी।

## खेत प्रान्तर मे

बेहिसाब सम्राटों के राज्य में रहकर
अन्त में एक दिन जीव ने देखा–दो तीन युग के बाद
कही कोई सम्राट नही, विप्लव नही
हल खीचने वाले बैल की नि शब्दता छायी रहती है खेतों की दुपहरी में।
बगाल के प्रान्तर में अपराह्न आकर
नदी की खाडी में धीरे धीरे घुलता है–
बबालोन, लन्दन का जन्म मरण
उनके पीछे मुड मुडकर देख रहा है बगाल।

शाम को ऐसा कहकर एक कामुक यहाँ
मिलने आया अपनी कामिनी से
मानव मरण पर उसका मर्म का गह्वर
एक मील तक धूप में बिखरा हुआ है।

(दो)
फिर शाम सिमट जाती है नदी की खाडी में
खेत में एक किसान पूरे दिन अपने बैलों के साथ जुता है
शताब्दी तीक्ष्ण हो आती है।
तमाम पेडों की लबी छाया
बगाल की भूमि पर पड रही है
इधर का दिनमान–इस युग की तरह अस्त हो गया है

अनजान किसान चैत बैशाख की सध्या विलम्ब देखकर
देखता रुकी हुई शाम
उन्नीस सौ बयालीस सी लगती है
लेकिन क्या यह उन्नीस सौ बयालीस सी ही है ?

(तीन)
कहीं शान्ति नही, उसकी उदीप्ति नही,
एक दिन मरण है, इसलिए जन्म है,
सूर्योदय के साथ आया था खेत में–
सूर्यास्त के साथ चला गया है।

सूर्य उदित होगा यह सोचकर गहरी नींद ले रहा है–
आज रात शिशिर का जल
प्रागैतिहासिक यादें लेकर खेल रहा है–
किसान का विवर्ण हल
हल के फाल से उभरे मिट्टी का अन्धेर ढेर।
एक चौथाई मील की तरह हो गयी है दुनिया
सारे दिन अन्तहीन काम करते हैं बजर खेत
पड़ा हुआ है सत्य और असत्य।

(चार)
खून की विपुल धारा से अन्धा होकर भी किसी ने
पाया नहीं यहाँ त्राण,
बैसाख में दरार सा
पृथ्वी भी असमान
और कोई प्रतिश्रुति नहीं
केवल खून की ढेरियाँ बिछी हैं दो तीन मील दूर तक

फिर भी वे सोने की तरह नहीं
केवल हँसुआ के शब्द पृथ्वी प्रक्षेपणों को भूलकर
करुण निरीह, निराश्रय हैं।
और कोई प्रतिश्रुति नहीं।
जलचींटी के चली जाने पर शाम की नदी कान पातकर
अपने ही पानी का शब्द सुनती है
जीवाणु से लेकर किसान मनुष्य ने
विकास किया है क्या? निज विस्तार के लिए
भ्रान्ति और विलास छाये सम्पूर्ण नीले सागर में?
चैत क्रूज़ नाईन्टी थ्री और सोवियत वार्ता
युगान्तर का इतिहास पूँजी देकर वही कुलहीन महासागर का प्राण
जान जानकर या नचिकेता प्रचेता से लगातार
पहला और अन्तिम आदमी का प्रिय प्रतिमान
हो जाता है स्वाभाविक जनमानव का सूर्य लोक।

## रात्रि

हाईड्रेन्ट खोलकर कोढी चाट लेता है पानी
हो सकता है वह हाईड्रन्ट वही फँस जाए।

अब दोपहरी और रात में भीड किये आते हैं नगरी में।
एक मोटर कार में बैठे उल्लू की तरह खाँसकर चला गया।

लगातार पेट्रोल झरता रहता है, सतत चौकसी के बावजूद
कोई जैसे भयावह भाव से गिर गया है जल में।
तीन रिक्शे तेज़ी से गैस लैम्प में खो गये
किसी मायावी की तरह।

मैं भी फेयर लेन छोडकर–हठवादिता से
मील दूर मील पथ चलकर–दीवार के पास
रुका, बेंन्टिक स्ट्रीट जाकर चिरेटी बाजार में
चल पडा मूँगफली की तरह शुष्क हवा में।

मदिर रोशनी की ताप चूमती है गाल पर।
किरासन, लकडी लाख घुन लगा जूट, चमडी की गध
डाईनामो के गूँज के साथ मिलकर
तनी रहती धनुष की डोर।

खींचे रहता है मृत ओ जाग्रत पृथ्वी को।
ताने रखता है जीवन धनुप की डोर को।
श्लोक रटती रह गयी कब से मैत्रेयी,
राज विजय कर गयी है अमर आतिला[1]
तब भी नितान्त अपने स्वर में ऊपर के जँगले से
गीत गाती है अधजगी यहूदी रमणी,
पितृलोक हँसता सोचता है गीत किसे कहते हैं
और किसे कहते हैं सोना तेल, कागज़ के खान।

कुछ फिरंगी युवक चले जा रहे सज धजकर
खम्भे से लगकर एक लाल नीग्रो हँसता है
हाथ से ब्रायर पाईप साफ़ करता है–
किसी गुरिल्ला के आत्म विश्वास से

नगरी की गहन रात उसे लगती है
लीबिया के जगल की तरह।
फिर भी जन्तु की तरह अति वैतालिक
दरअसल कपडे में शर्मिन्दा।

---

1 एक प्राचीन साध्वी स्त्री का नाम।

## लघु मुहूर्त

अब जाके दिन के अन्त में तीन अधेड बूढे भिखमगों का
अत्यन्त प्रशान्त हुआ मन
धूल माटी गाल भर हवा खाकर–रास्ते किनारे
धूसर हवा से कर लिया नीला मुख आचमन।
क्योंकि अब ये जहाँ जायेंगे उसे कहते हैं लाल नदी
जहाँ धोबी के गधे आकर पानी में
जादुई ढग से एक-दूसरे की पीठ पर चढकर मुख देखते है।
फिर भी जाने से पहले तीन भिखारी मिलकर
गोल होकर बैठे, तीन मग चाय पर
एक वजीर, दूसरा राजा, बाकी तीसरा नौकर
आपस में किया तय
फिर एक भिखारिन तीन लँगडे बूढे समधी होने के चक्कर में–
याकि चाय के प्याले पर कुटुम्ब बने हैं जानकर
मिलजुल गये वे चारजोड कानों में

हाईड्रान्ट से चाय की खातिर थोडा कुछ पानी लेकर
जीवन को कुछ पुख्ता कर लेने के लिए साधुभाव से वे
व्यवहार करने लगे सौंधी फुटपाथ पर बैठकर
सर हिलाकर दुख प्रकट किया–पानी वानी नही
चेतलाहाट के हौदे के जल का नल आज
काश! ऐसा होता–

महाराज।
भिखारी को एक पैसा देने पर हो गई जेठ भादो बहू नाराज़।
कहकर वे दढियल बकरे की सी रूखी दाढी हिलाकर
एक बार लडकी की तरफ़ आँख डालकर
अनुभव किया यहाँ चाय के न्यौते पर
लायी गयी है एक चुडैल।

हो सकता है यही लडकी पहली बार हँस रही हो
या अभी हुई है हँस हँस कर दोहरी।
गिलास से निकालकर दिया और एक गिलास
हम लोगों के पास सोना चाँदी नही पर हममें से कोई नही किसी के क्रीतदास।
इन सब बातों की गाज सुनकर एक निशाचर कीडा
कूद कूद कर चलने लगा उनकी नाक पर
नदी के पानी पार बैठकर वे जैसे बेंन्टिक स्ट्रीट में
गिन गये इस पृथ्वी के न्याय अन्याय
बालों की जूँ मारकर गिन गये न्याय अन्याय
कहाँ बिकता है–कौन ख़रीदता है
क्या क्या लेन देन होता है कौन किसे देता है।

कैसे धर्म का पहिया घूमता है बारीक हवा में।
एक आदमी मर जाए फिर कोई दवा दे दे
फ्री में–तो फ़ायदा किसे–
इसे लेकर चार जने कर गये गोष्ठी।
क्योंकि अब वे जिस देश में जायेंगे उसे कहते हैं उरो नदी
जहाँ खाँसने पर हाड की हड्डियाँ बाहर निकलकर
पानी में चेहरा देखने लगती हैं, जितने दिन दिखाई दे।

## नाविकी

हेमन्त ख़त्म हो गया है पृथ्वी के भडार से
और ऐसे कई हेमन्त ख़त्म हो गये हैं समय के कुहासे में,

बार बार फ़सल
घर ले जाते जाते, समुद्र पार के बदरगाहों पर
पहुँच गये हैं।

आकाश के मुखामुखी उस तरफ़ की मिट्टी जैसे सफ़ेद बादलों की प्रतिमा
इधर क़र्ज़ खून नुक़सान, गन्दगी, भूख और
कुछ नहीं—फिर भी अपेक्षातुर
हृदय में स्पन्दन है तभी रहता है डर
पाताल की तरह देश को पीछे छोडकर
नरक की तरह इस शहर में
कुछ चाहता है
क्या चाहता है ?
जैसे कोई देखा था—खण्डाकाश जितनी बार परिपूर्ण नीला हुआ
जितनी बार रात आकाश भरे स्मरणीय नक्षत्र हैं उगे
और उनकी तरह जितनी बार नर नारियों
जैसा जीवन चाहा था
जितने ये नीलकठ पक्षी उड गये हैं धुपैले आकाश में

नदी और नगरी की
मनुष्य की प्रतिश्रुति की राह पर जितना
निरुपम सूर्यलोक जल उठा है–उसका
कर्ज चुकाने को छाया हुआ है इसी अनन्त धूप का अन्धकार।
मानव का अनुभव ऐसा ही है।
बहुत सही हो तो भय होता है?
पहले मृत्यु व्यसन लगती थी?
अब कुछ भी व्यसन नही रहा।
आज सभी इस शाम के बाद तिमिर रात्रि में
समुद्री यात्री की तरह
अच्छे अच्छे नाविक और जहाजों से दिगन्त घूमकर
दुनिया भर के तमाम मुल्कों के बेसहारा सेवक की तरह
परस्पर को हे नाविक हे नाविक कहकर–
समुद्र ऐसा साधु नीली होकर भी महान मरुभूमि
वैसे ही हम लोग भी कोई नही–
उन लोगों का जीवन भी
वर्ग लिंग ऋण रक्त द्वेष और धोखाधडी
ऊँच नीच नर नारी नीति निरपेक्ष होकर
आज मानव समाज की तरह एकाकी हो गया है।

चुप्पा नाविक होना ही अच्छा
हे नाविक, हे नाविक, जीवन अपरिमेय है क्या?

## उत्तर प्रवेश

पुराने समय का सुर बहुत टूट गया है।
यदि कहा जाय
समुद्र के पार कट गया है,
सोने की गेंद की तरह सूर्य या पूरब के आकाश पर-
उसकी पटभूमि में
बहुत फेन भरी लहर
उड़ते फेन की तरह सारे आकाश में पक्षी
देश का पुराना साल बहुत पीछे छूट गया है
धूप के घेरे में, घास में सोकर
पोखर के पानी से किशोर के तृप्त हाथ में
ठंडा सिघाड़ा-पानी उछालते-उछालते
युवक की पलकों पर
मृगनाभि की तरह महानगर के रास्ते पर
किसी एक सूर्य जगत में
आँखें बन्द हो गईं थी।

वहाँ फिर सूर्य अस्त होता है।
पुनरोदय होता है भोर का
मनुष्य हृदय का अगोचर
गुम्बद के ऊपर आकाश में मँडराता है।

इसे छोड दिन का कोई स्वर नही है
बसन्त का दूसरा कोई रूप नही है
रह गये हैं हवाई जहाज
और आकाश पर मँडराते
अनगिनत हवाई अड्डे।

चारों ओर ऊँचे नीचे अन्तहीन नीड–
अपने रहने पर भी वह हो उठता था चिडियों की तरह कोमल
उसके आनन्द से मुखर
फिर भी वहाँ क्लान्ति है–
क्लान्ति–क्लान्ति
क्यों है यह क्लान्ति इसी सोच में हैरान
वहाँ भी मृत्यु
है यही–
यही
चाँद आता है अकेला
फिर झुड में आते हैं नक्षत्र
दिगन्त के सागर से पहली बार आवेग से बहती आती हवा
अस्त हो जाती है,
भोर उदय के साथ फिर लौट आती है
असख्य मनुष्यों के हृदय में अगोचर
रक्त के ऊपर आकाश में खून से लिखी हेडलाइन।
ये सब छोडकर पक्षियों का कोई स्वर–
बसन्त का कोई अता पता नही है।
निखिल और नीड के जन मानवों के समस्त नियमों से
सज्जन निर्जन बने रहते हैं।

भय प्रेम ज्ञान अज्ञान हमारी मानवतावादी भूमिका
अनन्त सूर्यों को अस्त करके
विगत शोक, है अशोककालीन इतिहास
इसके बाद प्रवेश करते है और बडे चेतना लोक में–
ये, भोर ही नवीन है मान लेना पडता है,
इसलिए अभी तीसरा ही अक है आग के आलोक से ज्योतिर्मय।

बुझ गयी–
## सृष्टि के तट पर
चुका है
ी का हृदय फाड
लियाँ सैनिक हो गई

साँझ में से रोशनी क्रम से निस्तेज।
फिर भी बहुत सा स्मरणीय काम हो
हरिण खा चुके अपने आमिष शिका गणिका के कोठे पर
सम्राट के इशारे पर कंकाल की पस ी।
फिर कंकाल सचल हो उठा हुए विस्मृति की ओर उड गये।
विलोचन गया था विवाह रचाने
और रसिकों ने बिताया सारा समय गुजायमान
सभाकवि दे गये पटु वाक्यों में गा
समस्त आच्छन्न स्वर ओंकार करते
या किया–हिटलर सात कानी कौडी दे

यह शाम मनुष्य और मक्खियों से
युग युग से मनुष्य का अध्यवसाय वी गयी खाल
दूसरों को सुविधा सी लगती है। नही।
क्विस लिग ने अपना नाम ऊँचा व
उसे खरीद बन गया जनरल
र गति से जाना चाहते थे स्वाभाविक पथ पर
फिर मनुष्य के हाथों मनुष्य की नो
दुनिया में बिना शोषण कोई नौकर
यह कैसा परिवेश बन गया है–
जबसे वाकपटु ने जन्म लिया है।
जबकि सामान्य जन धीरे धीरे मन्

तब कैसे और क्योंकर वे परिहास करते करते पाताल में फिसल गये–
हृदय के जन परिजनों को लेकर।

या फिर जो लोग अपनी प्रसिद्धि को प्यार कर
द्वार पर चूल्हा न पकाकर जान नही पाये कोई लीला
या फिर जो नाम अच्छा लगा था आपिला चापिला
रोटी की चाह में ब्रेड बास्केट खायी उन्होंने अन्त में।
ये सभी अपनी अपनी गणिका, दलाल, जमाखोर और दुश्मन की तलाश में
इधर-उधर की सोचकर सनिर्बन्धता में उतर गये
यदि कहा जाय, वे लोग तुमसे सुखी हैं,

गलत आदमी के साथ तब उस अन्धविश्वास के चलते
बात की तो दो हाथ सत्य को गुमटाये
भर उठे किसी उचाटपन से।
कुत्ते के क्रन्दन जैसा
पोंछे का चीथडा अचानक नाली में घिसने पर जैसी करता है आवाज।

घर के भीतर कोई लाई भूँज रहा है तो दरवाजे पर लगा जग
रद्द नहीं होता अपनी क्षय के व्यवसाय से,
चाहे आगे पीछे घर ही बैठ जाय।
गन्धी कीडे की बदबू नरक की सराय की चाय से
धीरे धीरे बहुत फ़ीका हो आता है
तरह तरह ज्यामितिक खिचाव के अन्दर
स्वर्ग मृत्यु पाताल के कुहासे की तरह मिलकर
एक गभीर छाया जाग उठती है मन में।
या कि वह छाया नही–जीव नहीं, सृष्टि की दीवार के पार
सिर से पाँव तक–मैं उसी की ओर देख रहा हूँ,

वानगॉग की पेंटिग की तरह-पर गॉग जैसे कुशल हाथ से
निकलकर वह नाक में आँख में शायद खिले हैं कइ कइ बार
बुझता खिल उठता, छाया राख दिव्य योनि सा लगता है।
स्वातितारा शुक्रतारा, सूय का स्कूल खोलता है
वही मनुष्य नरक या मृत्यु में तब्दील हो जाता है-
वृष मेष, वृश्चिक सिह का प्रातःकाल
चाहने जाता है कन्या, मीन मिथुन के कुल में।

## तिमिर-हरण का गीत

किसी हृदय में
कही नदी की लहर से
किसी सागर के जल में परस्पर रूप के साथ
दो क्षण जल की तरह घुले हुए
एक भोर की बेला में शताब्दी के सूर्य के पास
रहती है हमारे जीवन की हलचल
या शायद जीवन को ही सीखना चाहा था–
आँखों में एक दूसरा आकाश लिए।
हम लोग हँसे
हम लोग खेले
याद रह गयी घटनाओं के लिए कोई ग्लानि नही
एक दिन प्यार करते गये।

फिर वह सब रीति आज मृतक की आँख की तरह–
तारे अलोक की ओर देखते हैं–निरलोक।
हेमन्त के प्रान्तर में तारों की रोशनी
उसी रोशनी को खींचकर आज तक खेलता हूँ।

सूर्यलोक नही है–फिर भी–
सूर्यलोक मनोरम होगा यह सोचकर प्रसन्न होता हूँ।

सदा विमर्श होकर पुनीत और साधारण
देखता है फिर भी उसी सिरे से
यही बहुत सारी कच्ची छपारें
लंगरखाने में अन्न खाकर
मध्यवर्गीय लोगों की पीड़ा और हताशा का हिसाब किताब
छोड़कर
नर्मदा पर दूसरा ओवरब्रिज पर बैठकर
नर्मदा में उतरकर-
फुटपाथ से दूर निकलकर फुटपाथ में आकर
नक्षत्र की ज्योत्स्ना में सोना या मरना जानते हैं।

ये लोग इस पथ पर
ये लोग उस पथ पर-फिर भी-
मध्यवर्गियों की दुनिया में
हम लोग वेदनाहीन-अन्तहीन वेदना के पथ पर।

कुछ नहीं है-तब भी पूरे दम से खेलता हूँ
सूर्यलोक के प्रज्ञामय लगने पर हँसता हूँ,
जीवित या मृत रमणी की तरह मैं अन्धकार में सोचता हुआ
महानगरी की मृगनाभि को प्यार करने लगा हूँ
तिमिरहरण के लिए अग्रसर होकर
हम लोग क्या तिमिर विलासी हैं?
नहीं हम लोग तिमिर विनाशी होना चाहते हैं?
हाँ हम लोग तिमिर विनाशी ही हैं।

## जूहू

शान्ताक्रूज से उतरकर अपराह्न जूहू के समुद्र किनारे जाकर
कुछ स्तब्धता भीख में माँगी थी सोमेन पालित ने सूर्य के करीब रुककर
बगाल से इतना दूर आकर—समाज दर्शन तत्त्व विज्ञान भूलकर
पश्चिम के समुद्र तीर पर प्रेम को भी यौवन की कामाख्या की तरफ फेंककर
सोचा था रेत के ऊपर सागर की लघु आँख केकडे जैसी देह लिये
शुद्ध हवाखोरी करेगा पूरे दिन जहाँ दिन जाकर साल पर लौटता है
उम्र आयु की ओर—निकेल घडी से सूर्य घडी के किनारे
घुल जाती है—वहाँ उसकी देह गिरती हुई रक्तिम धूप के सहारे।
औरेंज स्क्वैश पीयेगा या बम्बई टाइम्स' को
हवा के गुब्बारों में उडायेगा
वर्तुल माथे पर सूर्य रेत फेन अवसर अरुणिमा उँडेल
*हवा के दैत्य जैसे हाथी क्षण में खींच लेगा*
चिन्ता के बुलबुलों को। पीठ के उस पार से फिर भी एक आश्चर्य सगत
दिखाई दिया। लहर नही, बालू नही, उनचास वायु सूर्य नही कुछ
उसी रलयेल के बीच तीन चार धनुष दूर दूर एरोड्रम का शोर
लक्ष्य मिल गया थोडी देर कौतूहल से बिला गये सारे सुर
फिर घेर लिया उसे वृष मेष वृश्चिक की तरह प्रचुर
सबकी झिक आँख में—कन्धे पर माथे के पीछे
कोई असमजस सरदर्द की बात सोचने पर

अपने ही मन की भूल से कब उसने कलम को तलवार से भी
प्रभावी मान कर लिखी भूमिका एक किताब सबको सम्बोधित कर।
उसने कब बजट मिटिग स्त्री पार्टी पोलिटिक्स मास, मार्मलेड छोडकर
वराह अवतार को श्रेष्ठ मान लिया था
टमाटर जैसे लाल गाल वाले शिशुओं की भीड
कुत्तों के उत्साह घुडसवार, पारसी मेम खोजा बेदुईन समुद्रतीर
जूहू, सूर्य फेन रेत सान्ताक्रुज में सबसे अलग रतिमय आत्मक्रीडा
उसे छोड है कौन और? उसके जैसे निरुपम दोनों गाल पर दाढी के अन्दर डाल
दो विवाहित उल्लू त्रिभुवन खोज कर घर में बैठे हुए हैं
मुशी सावरकर नरीमन, तीन तीन कोणों से उतरकर
देख गये महिलाएँ मर्म की तरह स्वच्छ कौतूहल भर कर
अव्यय सारे शिल्पी मेघ को न चाह इस पानी को प्यार करते हैं।

## जनान्तिक

तुम्हें देख सकूँ—ऐसी आँख नहीं है मेरे पास, फिर भी
गहरे विस्मय में मैं—तुम्हारा एहसास पाता हूँ—
आज भी पृथ्वी में रह गया हो।
कहीं सांत्वना नहीं पृथ्वी पर
बहुत दिनों से शान्ति नहीं
नीड़ नहीं
चिड़ियों की तरह किसी हृदय के पार
पंछी नहीं।

अगर मनुष्य के हृदय को जगाया न जाये तो उस
सुबह की चिड़िया या कि बसन्त आया करवट
कैसे पहचान कर सकता है कोई।
चारों ओर अनगिनत मशीनें मशीन के देवता के पास
खुद को आज़ाद समझकर
मनुष्य हो गया है नियमहीन।

दिन की रोशनी की तरफ़ देखते ही दिखाई देता है
आहत होने, मरने और स्तब्ध रहने के सिवाय लोगों के लिए
और कोई जननीति नहीं रही।

जो–जिस देश में रहता है वही का व्यक्ति हो
जाता है। राज्य बनाता है–साम्राज्य की तरह
भूमि चाहता है। एक व्यक्ति की चाहत एक समाज
को तोडकर
फिर उसी की प्यास लिए गढता है।

उसे छोड किसी और राजनीति पर अमल करना हो तो
उसे उज्ज्वल समय स्रोत में खो जाना पडता है।
और वह स्रोत इस शताब्दी के भीतर नही
किसी के भीतर नही
इन्सान टिड्डियों जैसे चरते हैं
और मरते हैं।
ये सारे दिनमान मृत्यु आशा प्रकाश चुनने में
व्याप्त होना पडता है।
मन जाना चाह रहा है नवप्रस्थान की ओर ।
बगैर आँख हटाये फिर अचानक किसी भोर के जनान्तिक
की आँखों में रहती है–एक और आभा
इस पृथ्वी की धृष्ट शताब्दी के हृदय में नही–
मेरे हृदय की अपनी चीज होकर रह गयी हो तुम।

तुम्हारे सिर क केश
ताराविहीन व्यापक विपुल
रात की तरह, अपने एक निर्जन नक्षत्र को
पकडे हुए हैं।

तुम्हारे हृदय की देह पर हमारे जन मानविक
रात नहीं है हमारे प्राणों में एक तिल

देर बीती रात की तरह हम लोगों का मानव जीवन
प्रचारित हो गया है, इसलिए
नारी
वही एक तिल कम
आर्तरात्रि हो तुम।

केवल अन्तहीन ढलान, मानव बना पुल
केवल अमानवीय नदियों
के ऊपर नारी कठ तुम्हारी नारी तुम्हारी ही देह घिरे
इसलिए उसके उसी सप्रतिम आमेय शरीर पर
हमारी आज की परिभाषा से अलग और भी औरतें हैं।
हमारे युग के अतीत का एक काल रह गया है।
अपने ककड पर पूरे दिन नदी
सूर्य के सुर की वीथी फिर भी
एक क्षण के लिए भी नही पता चलता—पानी किस अतीत में मरा है।
पर फिर भी नई नाडी नया उजला जल ले आती है नदी
जानता हूँ, जानता हूँ मैं आदिनारी शरीरिणी की स्मृति को
(आज हेमन्त की भोर में) वह कब की अधेरों की
सृष्टि की भीषण अमा क्षमाहीनता में
मानव हृदय की टूटी नीलिमा में
बकुल पुष्प के वन में मन में अपार रक्त ढलता है
ग्लेशियर के जल में
असती न होकर भी स्मरणीय अनन्त ऊँचाई में
प्रिया को पीडा देकर कहाँ नभ की ओर जाता है।

## समय के पास

क्या किया और क्या सोचा
यह सब समय के पास गवाही देकर जाना पडता है।
वो सब एक दिन हो सकता है किसी सागर के पार
आज की परिचित किसी नील आभा वाले पहाड पर
अन्धकार में हाड मास की तरह सोया हो
फिर भी अपनी आयु के दिन
–गिनता रहता है मानव चिर दिन
नीलिमा से बहुत दूर हटकर
सूर्यलोक में अन्तर्हित होकर
पपीरस में–उस दिन प्रिंटिंग प्रेस ने कुछ नही कहा
प्राचीन दिनों के बाद नयी शताब्दी का चीन
खो गया उस दिन।

आज मनुष्य हूँ मैं फिर भी सृष्टि के हृदय में
हेमन्ती स्पन्दन के पथ की फ़सल
और मानव का अगला कंकाल
और नव–

नव नव मानव के भीतर
केवल अपेक्षातुर होकर पथ पहचानना।

पहचान लेना चाहता
और उस चाहने के रास्ते पर बाधा बना अन्न की असमाप्त भूख
(क्यों है भूख–
क्यों है वह असमाप्त)

जो सब पा गये उनका लुटाना
जो नही पाये उनके जी का जञाल
मैं यह सब।
समय के सागर पार
कल की सुबह और आज के अन्धकार में
सागर के विशाल सफ़ेद पक्षी की तरह
छाती में दो डैने फैलाये
कही उच्छल प्राण शिखर
जलाता है साहस साध स्वप्न है सोचता है।
सोच लेने दो–यौवन की जीवन्त प्रतीक अपनी जय जयकार
फिर प्रौढता की ओर पृथ्वी के जाने की उम्र के
आगे आ किसी आलोक पक्षी को देखा है?
उसकी जय जयकार युग युग में जय जय।
डोडो चिडिया नही है।

बार बार मनुष्य पृथ्वी की आयु में जन्मा है
नये नये इतिहास के नाव से भिडा है
तब भी कहाँ है उस अनिवर्चनीय
सपनों की सफलता–नवीनता–शुभ मानवता की भोर?

नचिकेता जराथुस्त्र, लाओत्से एन्जिलो रूसो लेनिन की चाहत भरी दुनिया
हाँककर ले आ पाये हैं हमारे लिए स्मरणीय शतक

जितना भी शान्त स्थिर होना चाहते हैं
उतना ही अन्धकार में इतिहास पुरुषों को दृढ आघात लगती है।
कही भी बिना आघात-आघातरहित अग्रसर सूर्यलोक नही।

हे काल पुरुष तारा अनन्त द्वद्व की गोद में चढा रहना होगा
केवल गति का गुणगान करते-नाव खोली है स्वच्छन्द उत्सव में मैंने
नई तरग पर रौद्रविप्लव में मिलन सूर्य पर मानविक युद्ध
क्रम से निस्तेज हो जाता है क्रम से गभीर होता है मानव जाति मिलन?

नयी नयी मृत्यु ध्वनि रक्त ध्वनि भय बोध जीत कर मनुष्य के चेतना के दिन
घोर चिन्ता में राख होकर फिर भी इतिहास महल में नवीन
होगी क्या मानव की पहचान-फिर भी हर आदमी साठ बसन्तों के भीतर
यह सब सुन्दर निबिड की आवाज है     है     है     उसी बोध के भीतर
चल रहा है नक्षत्र रात, सिन्धु रीति मानव का कामी हृदय
जय हो अस्त सूर्य जय अलख अरुणोदय जय।

## सूर्यतामसी

कहीं से चिड़ियों की आवाज़ें सुनता हूँ
किसी दिशा से समुद्र का स्वर,
कहीं भोर रह गई है—तब भी
अगणन मनुष्य की मृत्यु रोने पर—अंधकार में जीवित और मृत का हृदय
विस्मृति की तरह देख रहा है।
मरण का या जीवन का?
कैसी सुबह है यह?
अनन्त रात की तरह लगता है।
एक रात भयकर पीडा सह
समय क्या अन्त में ऐसे ही भोर का आता है
अगली रात के काल पुरुष की छाती से जाग उठता है?

कहीं डैने का शब्द सुनता हूँ
किसी दिशा से समुद्र का स्वर
दक्षिण की ओर
उत्तर की ओर
पश्चिम के प्राण से
माने सृजन की ही भयावहता
तब भी बसन्त के जीवन की तरह कल्याण से
सूर्यालोकित सारे सिन्धु पक्षियों के शब्द सुनता हूँ

भोर के बदले तब भी वहाँ रात्रि का उजाला
वियेना टोकियो रोम म्यूनिख–तुम ?
बहो बहो  उस ओर नीले में
सागर के बदले, अटलान्टिक चार्टर निखिल मरुभूमि पर।
विलीन नही होता मायामृग–नित्य दिक्दर्शित
अनुभव पर मनुष्य का क्लान्त इतिहास
जो जाने हैं सीखें नही जो
उसी महाश्मशान की गर्म कोख में धूप की तरह जलकर
गिद्ध के करुण क्रदन के कोलाहल में
जागता है क्या जीवन–हे सागर।

## विभिन्न कोरस

पृथ्वी में बहुत दिन जीवित रहती है हमारी आयु
दिनमान सुनते हैं मृत्यु के शब्द।

मन की आँख बन्द किये नींद में सोकर
हो सकता है दुर्योग से तृप्ति पाये कान
ऐसा ही एक दिन महसूस किया था
आज बहुत क़रीब वही घोर घनाया हुआ है
जितनी ऊँची दीवार या जितना गड्ढा
उतने ही अधिक गुनाह भरे काम
करते जाते हैं, घर से उचट कर सतापित मन
विभीषण नृसिह से अभ्यर्थना करते
भोर के भीतर से शाम गुज़र जाती है,

रात की उपेक्षा कर पुनराय भोर में
लौट आता है फिर भी उसका कोई बास स्थान नहीं है
फिर उस पर विश्वास किए बनाया है घर
बहुत पहले एक दिन–कौर खाने तक को जब नही था
फिर भी माटी की ओर मुख किये पृथ्वी में धान
रोपते रहे–दूसरी सब बातों को भूलकर
मन उसका चिन्ताओं की दुनिया में भटक कर

थोडी सी रोशनी से बडी बडी चिन्ताओं को जीतकर
कही भविष्य की ओर–पीछे खोने को कुछ नही के बीच
एक ख़ामोशी उतर आयी है हमारे घरों में।

हम लोग तो बहुत दिन लक्ष्य धरे शहरों में चलते गये
काम करते गये पैसा कमाते गये।
वोट देकर शामिल कर लिये गये जनतत्र में
ग्रन्थों को ही सत्य मानकर
सहधर्मियों के साथ जीवन के अखाडे में उतर पडे
साक्षरों के अक्षर की तरह
मानकर बहुत पाप कर पाप कथा उच्चरित करके
विश्वास भग हो जाने पर भी जीवन में यौन एकाग्रता
नही भूला फिर भी कही कोई प्रीत नहीं इतने दिन पर भी
शहर के प्रमुख पथों के मोड मोड पर नाम खुदे हैं
एक मृत की देह दूसरे शव का आलिगन किये–
आतक से ठडा पडकर या फिर किसी और बात पर मौत के करीब
हमारा अनुभव ज्ञान नारी हेमन्त की पीली फ़सल में
इतस्तत बीत जाता है अपने अपने स्वर्ग की खोज में
किसी के मुख पर दो शब्द नहीं–उपाय नही है कहकर
स्थिति बदलने की चाह में उसी स्थिति पर
रह जाते हैं शताब्दी के अन्त तक ऐसे आविष्ट नियम
उतर आते हैं शाम के बरामदे से सारे जीर्ण नर नारी
तकते रहते हैं उतरती धूप के पार सूर्य का ओर
खण्डहीन मडल की तरह काँच की तरह के।

(दो)
पास में मरु की तरह महादेश बिखरा हुआ है
जितनी दूर तक आँख देखती है–अनुभव करता हूँ

फिर उसे समुद्र का तीक्ष्ण प्रकाश मानकर
हमारे जँगले पर बहुत से लोग
देखते रहते हैं दिनमान, नफ़रत से
उनके मुख प्राण की ओर देखकर लगता है
शायद वे समुद्र का स्वर सुन रहे हों
भयभीत मुखश्री पर ऐसा अनन्य विस्मय–
मिला हुआ है। वे सब बहुत दिनों हमारे देश में
घूमे फिरे शारीरिक वस्तु की तरह
पुरुष की हार देख गये वास्तविक देव के साथ रण में
या फिर यथार्थ को जीत लिया प्रज्ञावश
या शायद देव की अजय क्षमता–
या खुद उसकी क्षमता भी इतनी अधिक कि
सुनता गया है बहुत दिनों हमारे मुँह का हिलना
फिर भाषण समाप्त होता है जोरदार तालियों के साथ।
ये लोग, वह सब कुछ जानते हैं।
हमारे अंधेरे में परित्यक्त खेतों की फ़सल
झड़ गये हैं अपरूप हो उठते हैं फिर
विचित्र छवि के माया बल से।
बहुत दूर नगरी की नाभि के भीतर आज भोर में
जो थका नही उनका अविकार मन
नियम से उठकर काम करते हैं–
परिचित स्मृति की तरह रात में सोते हैं
तभी से कलरव छीना झपटी, अपमृत्यु भ्रात युद्ध
अन्धकार मस्कार, ब्याज स्तुति भय, निराशा का जन्म होता है।
तब समुद्र पार मे स्मृति चक्षु रूपी नाविक आते हैं।
ईश्वर से अधिक स्वर्णमय
आक्षेप में प्रस्तुत होता है अर्ध नारी स्वर

तराई से लेकर बग सागर तक
सुकुमार छाया डालकर सूर्य मामा के
नाविक की लिविडो को रेखाकित करते हैं।

(तीन)
घास के ऊपर से बह जाती है हरी हवा
या घास ही हरी होती है।
या कि नदी का नाम मन में लेने पर चारों ओर प्रतिभासित
हो उठती है नदी–
जो दिखाई देती है शाम तक
असख्य सूर्यों की आँख में तरग के आनन्द से
दायें और बायें लोटकर
दखता रहता हूँ मनुष्य का दुःख क्लान्ति दापित अध पतन की सीमा
साल उन्नीस सौ बयालीस में टकराकर नई गरिमा से एक बार फिर
पाना चाहता है धुआँ रक्त अन्ध अन्धकार के गह्वर से निकलकर
जितनी घास है उससे भी अधिक लडकी
नदी से भी अधिक उन्नीस सौ तैंतालीस चवालीस में पुरुषों का हाल, उत्क्रान्त है
मिसाईल के ऊपर धूप में नीलाकाश में दूधिया हस
हिन्द सागर छोडकर उड जाते हैं झट समुद्र की चाह में–
मेघ की बूँद की तरह स्वच्छ लुढकते
साफ़ हवा काटकर वे पख वाले पक्षी फिर भी
वे आये हैं सहसा धूप में पथ में अनन्त पारुल[1] से
स्यात का शुचिमुख खिल उठता है उनके कधे पर
नीलिमा के नीचे

---

1 एक फूल

अनत में जागरूक जनसाधारण आज चलते हैं ?
द्वेष, अन्याय, रक्त उकसाने कानों पर घूँसे और डर
चाहा है प्यार भरा घर बिना चोरी ज्ञान और प्रणय ?
महासागर के जल कभी क्या सत्‌जिज्ञासा की तरह हुई है स्थिर–
अपने ही पानी के गाज पर
भीड को पहचाना था तनुरा नीलिमा के नीचे ?
नही तो उच्छल सिन्धु मिटता है ?
तब भी झूठ नही सागर की रेत पाताल की स्याही उडेल
समय सुख्यात गुण से अन्ध होकर बाद में आलोकित हो जाए।

## माघ सक्रान्ति की रात

हे पावक–
अनन्त नक्षत्र वीथी तुम
अन्धेरे में तुम्हारी पवित्र अग्नि जल रही है।

समय और आकाश में पृथ्वी के मन पर–
हर सृजन का अन्त यदि अधेरी रात हो
और मानव हृदय में भी केवल वही प्रतिबिम्बित हो
तब भी निःशब्द मनोबल से जलती है ज्योति–
समय आकाश पृथ्वी के मन पर
जाना है मैंने भोर में धूप में, नीलिमा में
निःशब्द अरबों अधेरी रातों में वह ज्योति शिखा लुप्त है।

और एक दिन महाविश्व अधेरे में डूबने पर
मन में सोची पर जो बोली नहीं नारी
उसे ही लक्ष्य में लिए अधकार, शक्ति अग्नि स्वर्ण की तरह ही–
देह होगी मन होगा और तुम होगी उन सबकी ज्योति।

## सूर्य नक्षत्र नारी

तुमसे सदा विदाई की ही बात कही।

शुरू से जानता हूँ मैं
उस दिन भी तुम्हारा मुख नहीं पहचाना
मुझे बताया भी नहीं किसी ने–
तुम पृथ्वी में हो
कहीं पानी को घेरे पृथ्वी में अथाह पानी की तरह
रह गयी हो तुम।
यही सोचकर चल रहा था
अपने सिर पर सवार स्फीत सूर्य को लोग पहचानते हैं
आकाश के अप्रतिम नक्षत्र को पहचानेगा कौन कि यह किस निर्झर का है ?
तब भी तुम जीवन को छू गयी–
मेरी आँख से निमेष निहत
सूर्य को हटाकर।

हट जाता, पर आयु के दिन बीतने से पहले
नव नव सूर्य को किन नारियों के बदले
छोड देता है ? कौन देगा ? सारे दृश्य उत्सव
से बडे
स्थिरतर प्रिय तुम निःसूर्य निर्जन
कर देने आये।

मिलन और विदाई के प्रयोजन से मैं अगर शामिल होता
तो तुम्हारे उत्सव में
मैं अन्य सारे प्रेमियों की तरह
विराट पृथ्वी और सुविशाल समय की सेवा में
आत्मस्त हो जाता।

ये तुम नही जानती पर, मैं जानता हूँ, एक बार तुम्हें देखा है
पीछे पटभूमि में समय का
शेषनाग था नही विज्ञान के क्लान्त नक्षत्रगण
बुझ गये–मनुष्य अपरिज्ञात हो गया अन्धकार में
तब भी उनके बाच से
ऐ गभीर मानुषी क्यों तू खुद को पहचान कराती है ?
आहा उसे अनन्त अधकार की तरह जानकर मैं फिर
अल्पायु रगीन धूप में मानव के इतिहास में जाने कहाँ जा रहा हूँ ?

(दो)
चारों ओर सृजनों का अन्धकार रह गया है, नारी
अवतीर्ण शरीर की अनुभूति छोड उससे अच्छा
कहीं ऐसा सूर्य नही है जो जलने पर
तुम्हारी देह आलोकित करके सब स्पष्ट कर दे किसी भी काल में–
एक शरीर जलने पर होता है जितना।

इस समस्त अत्याचारी समय को तोडकर
नया समय गढा तुमने स्वय को नहीं गढा पर तब भी तुमने
ब्रह्माड के अन्धकार में एक बार जन्मने का अनुभव किया था–
जन्म जन्मान्तर की मरण स्मरण की पुलिया
तुम्हारा हृदय स्पर्श करके कहती है आज

उसी का सकेत कर गयी–
अपार काल का स्रोत नही मिलने पर किस तरह से नारी,
तुच्छ खण्ड, थोडे समय का स्वत्व बिता कर अऋणी तुम्हें पास पायेगा
तुम्हारे निविड निज आँख आकर अपना विषय ले जायेंगे ?
समय के कक्ष से दूर कक्ष की चाबी
खोलकर तुम दूसरी लडकियों की
आत्म अतरगता का दान
दिखाकर अनन्त काल टूट जाता है बाद में
जिस देश में नक्षत्र नही–कही समय नहीं और
मेरे हृदय में नही विभा–
दिखाओगी निज हाथ से–अवशेष में–कैसे मकर के घर की प्रतिमा।

(तीन)
तुम हो यह जानकर अन्धकार ही अच्छा है मैंने जो अतीत और
शीत क्लातिहीन बिताया था
केवल वही बिताया है।
बिताकर जाना यही है शून्य, पर हृदय के पास रहा एक कोई और नाम।
अन्तहीन इन्तजार से तब भी अच्छा है–
अतीत के द्वीप पर लक्ष्य रखकर अविराम चलते जाना
शोक को स्वीकार कर अवशेष में
मिटते शरीर की उज्ज्वलता में अनन्त का ज्ञान पाप मिटा देना।

आज इस ध्वसरत अन्धकार को भेद कर विद्युत की तरह
तुम जो शरीर लिए रह गयी हो वही बात समय के मन में
बताने का आधार क्या एक पुरुष के निर्जन शरीर में
केवल एक पलक–हृदयविहीन और सब अपार आलोक वर्ष घिरे
अद्य पतित इस असमय में कौन मा वही उपचार पुरुष मानुष ?

[illegible] हूँ मै-करता हूँ मै फिर भी
यह [illegible] सुन [illegible] का
[illegible] है [illegible]-
[illegible] अन्त [illegible]
[illegible] अपनी [illegible] सजल दृगों [illegible]
[illegible] अपना [illegible]।

